 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

'ज्ञान, विज्ञान आणि सुसंस्कार यासाठी शिक्षण प्रसार'

–शिक्षण महर्षी प. पू. डॉ. बापूजी साळुंखे

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली और दत्ताजीराव कदम आर्टस्, सायन्स ॲन्ड कॉमर्स कॉलेज इचलकरंजी के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित

द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

हिंदी के आँचलिक उपन्यास: महत्व और विशेषताएँ

(तिथि: 23-24 जनवरी, 2015)

संपादक

प्रा. शहाजी जाधव

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,

डी. के. ए. एस. सी. कॉलेज, इचलकरंजी-416 115

website: www.dkasc.ac.in

Email: dkasccollege@gmail.com

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

'ज्ञान, विज्ञान आणि सुसंस्कार यासाठी शिक्षण प्रसार'

-शिक्षण महर्षी प. पू. डॉ. बापूजी साळुंखे

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली और दत्ताजीराव कदम आर्टस्, सायन्स ॲन्ड कॉमर्स कॉलेज इचलकरंजी के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित

दूवि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी

हिंदी के आँचलिक उपन्यास: महत्व और विशेषताएँ

(तिथि: 23-24 जनवरी, 2015)

संपादक

प्रा. शहाजी जाधव

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,

डी. के. ए. एस. सी. कॉलेज, इचलकरंजी-416 115

Reaccredited by
NAAC with "B" Grade. (CGPA2.89)

website: www.dkasc.ac.in

Email: dkasccollege@gmail.com

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

हिंदी के आँचलिक उपन्यास: महत्व और विशेषताएँ

संपादक

प्रा. शहाजी जाधव

अध्यक्ष, हिंदी विभाग,

डी. के. ए. एस. सी. कॉलेज, इचलकरंजी (महाराष्ट्र)-416 115

प्रकाशक

डॉ. मिलिंद हुजरे

प्राचार्य,

डी. के. ए. एस. सी. कॉलेज, इचलकरंजी,

तहसील: हातकणंगले, जिला: कोल्हापुर,

राज्य: महाराष्ट्र (भारत)-416 115

दूरभाष: 0231-2420412

प्रबंधन समिति

1) उपप्राचार्य प्रा. वसंत वांद्रे
2) डॉ. सी. आर. पाटिल
3) प्रा. सी. बी. पाटिल
4) डॉ. सुधीर पाटिल
5) डॉ. ए. एस. व्हासमणे
6) प्रा. विलास पाटिल
7) प्रा. बी. एस. पाटिल
8) डॉ. ए. डी. महाळुंगे
9) प्रा. एम. एम. कांबळे
10) डॉ. एस. आय. नुरानी
11) प्रा. मोहन वीरकर
12) प्रा. श्रीमती एस. ए. जमादार
13) श्रीमती टी. व्ही. कदम
14) प्रा. जे. के. पवार
15) डॉ. ए. बी. आळवेकर
16) प्रा. टी. ए. हराळे
17) डॉ. एम. जी. पाटिल
18) प्रा. सौ. शैलेजा चनगुंडी
19) प्रा. सौ. एस. जे. वेल्हाळ
20) प्रा. डी. एस. शिंदे
21) प्रा. जी. एस. उबाळे
22) प्रा. आकाश बनसोडे
23) प्रा. मयूर बोरगे

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

शुभ संदेश...

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली और श्री स्वामी विवेकांनद शिक्षण संस्था (कोल्हापुर) संचालित दत्ताजीराव कदम आर्टस्, सायन्स ॲन्ड कॉमर्स कॉलेज, इचलकरंजी के हिंदी विभाग द्वारा आयोजित द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में सहभागी सभी विद्वान, संशोधक, साहित्यकार, मार्गदर्शक तथा छात्रों का मन:पूर्वक स्वागत!

यह राष्ट्रीय संगोष्ठी दि. 23-24 जनवरी, 2015 को संपन्न हो रही है। 'हिंदी के आँचलिक उपन्यास: महत्व और विशेषताएँ' विषय बहुत व्यापक है। इस विषय पर जितनी चर्चा की जाए उतनी कम है। हिंदी साहित्य में आँचलिक उपन्यासों का अपना अलग महत्व है। इस दृष्टि से यह विषय भी अपना अलग महत्व रखता है। इसके अंतर्गत आँचलिक लोगों का जीवन, परंपराएँ, खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, रूढ़ि-परंपरा, भाषाशैली आदि पर चर्चा होने वाली है। यह चर्चा भविष्य में प्राध्यापक, अनुसंधाता तथा विद्यार्थियों को अपने जीवन में लाभदायी सिद्ध होगी।

इस द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में शरीक होने आए सभी प्रतिभागी यह चर्चासत्र सुचारु रूप से संपन्न करेंगे, इसी उम्मीद के साथ संगोष्ठी के संयोजक को शुभकामनाएँ देता हूँ।

मा. श्री अभयकुमारजी साळुंखे
अध्यक्ष,
श्री स्वामी विवेकानंद शिक्षण संस्था, कोल्हापुर।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

शुभ संदेश...

प्रसन्नता बात यह है कि दत्ताजीराव कदम आर्टस्, सायन्स ॲन्ड कॉमर्स कॉलेज, इचलकरंजी के हिंदी विभाग की ओर से 'हिंदी के आँचलिक उपन्यास: महत्व और विशेषताएँ' विषय पर द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है। इस संगोष्ठी के लिए मेरी ओर से हार्दिक शुभकामनाएँ।

इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में चर्चा करने हेतु उपस्थित सभी विद्वजन, संशोधक, साहित्यकार, मार्गदर्शक तथा छात्रों का मैं मनःपूर्वक स्वागत करती हूँ। इन दो दिनों में आप सब मिलकर सफल चर्चा करेंगे। फलस्वरूप आप सभी सिद्धहस्त लेखक, संशोधक, शोधार्थी अपनी चर्चा के माध्यम से समाज उन्नति की राह प्रशस्त करेंगे।

ज्ञान, विज्ञान, तंत्रज्ञान के बदलाव के अनुरुप हर दिन समाज में अलग-अलग क्षेत्रों में बदलाव हो रहे हैं। साहित्य का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं हो सकता। मुझे यह सुनकर भी खुशी हुई कि इन दो-दोनों में आप सब मिलकर हिंदी के आँचलिक उपन्यास को लेकर चर्चा कर रहे हैं। इस चर्चासत्र के लिए मैं आपको शुभकामनाएँ देती हूँ।

सौ. शुभांगी गावडे
सचिव,
श्री स्वामी विवेकानंद शिक्षण संस्था, कोल्हापुर।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

प्राचार्यजी का मंतव्य...

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली एवं दत्ताजीराव कदम आर्टस्, सायन्स ॲन्ड कॉमर्स कॉलेज, इचलकरंजी के हिंदी विभाग के संयुक्त तत्वावधान में 'हिंदी के आँचलिक उपन्यास: महत्व और विशेषताएँ' विषय पर आयोजित द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी में सभी विशेषज्ञों, प्रतिभागियों तथा शोधार्थियों का मैं सहर्ष स्वागत करता हूँ।

श्री स्वामी विवेकानंद शिक्षण संस्था, कोल्हापुर संचालित दत्ताजीराव कदम आर्ट्स, सायन्स ॲन्ड कॉमर्स कॉलेज, इचलकरंजी की स्थापना सन् 1962 ई. में हुई। महाविद्यालय को शिवाजी विश्वविद्यालय, कोल्हापुर की स्थायी सलग्नता प्राप्त है। महाविद्यालय के अंतर्गत स्नातक एवं स्नातकोतर विभाग, बी. बी. ए., बी. सी. ए. तथा विश्वविद्यालय के सहयोग से अन्य कई पाठ्यक्रम चलाएँ जाते हैं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के नियम के तहत महाविद्यालय 2-एफ-12-बी नामांकन पाप्त है। नैक समिति द्वारा महाविद्यालय का मूल्यांकन हो चुका है। 'ज्ञान-विज्ञान आणि सुसंस्कार यासाठी शिक्षण प्रसार' यह सूत्र लेकर काम करने वाला हमारा महाविद्यालय देहाती तथा शहरी विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा की सुविधा परिपूर्ण ढंग से उपलब्ध कर रहा है। यहाँ महाविद्यालय में कनिष्ठ तथा वरिष्ठ विभाग पूरी सक्षमता के साथ कार्य कर रहा है। क्रीड़ा और सांस्कृतिक क्षेत्रों में यह महाविद्यालय निरंतर अपनी योग्यता सिद्ध करता आ रहा है। महाविद्यालय में करीबन छह हजार से अधिक छात्र-छात्राएँ अध्ययन कर रहे हैं। अध्ययन-अध्यापन के अलावा शोध कार्य में भी महाविद्यालय आगे बढ़ रहा है। महाविद्यालय के कई प्राध्यापक शोध निर्देशन का कार्य करते हैं। महाविद्यालय के पाँच प्राध्यापक अलग-अलग अध्ययन मंडल के सदस्य के रूप में कार्यरत हैं। हमारा महाविद्यालय शैक्षिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक कार्य में भी अग्रणी है। इसके अलावा महाविद्यालय एकात्मता, रक्तदान, समाज प्रबोधन, दत्तक ग्राम योजना जैसी अनेक योजनाओं में अहम भूमिका निभा रहा है।

'हिंदी विभाग' महाविद्यालय का एक अविभाज्य भाग है। उनके द्वारा आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में 'हिंदी के आँचलिक उपन्यास: महत्व और विशेषताएँ' विषय पर दो-दिन विस्तार से चर्चा होगी; जिसके फलस्वरूप आज के समय में आँचलिक विषय को एक नई दिशा एवं गति मिलेगी। महाराष्ट्र से ही नहीं बल्कि अन्यान्य राज्यों से प्राप्त शोध आलेखों को स्मारिका में संपादित किया गया है। इस स्मारिका को मूर्त रूप देने में हिंदी विभाग के अध्यक्ष एवं स्मारिका के संपादक प्रा. शहाजी जाधव तथा पूर्व हिंदी विभाग अध्यक्ष डॉ. छाया पाटील का सक्रिय सहयोग रहा है। इसलिए मैं उनका आभारी हूँ। इस स्मारिका को आपके हाथों सौंपते हुए मैं यही कामना करता हूँ कि यह स्मरणिका प्राध्यापक, शोधकर्ता एवं छात्रों को लाभदायक सिद्ध होगी।

धन्यवादसहित!

डॉ. मिलिंद हुजरे
प्राचार्य,
डी. के. ए. एस. सी. कॉलेज, इचलकरंजी।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

संपादकीय...

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, नई दिल्ली तथा दत्ताजीराव कदम आर्टस्, सायन्स ॲन्ड कॉमर्स कॉलेज, इचलकंरजी (हिंदी विभाग) के संयुक्त तत्त्वावधान में 'हिंदी के आँचलिक उपन्यास: महत्व और विशेषताएँ' विषय पर आयोजित द्वि-दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी के उपलक्ष्य में बनाई गई स्मरणिका आपके हाथों सौंपते हुए हमें अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है।

हिंदी साहित्य में 'हिंदी के आँचलिक उपन्यास: महत्त्व और विशेषताएँ' पर काफी चर्चा हो रही हैं। इसी कारण विद्यार्थी, संशोधक और प्राध्यापकों को आँचलिक साहित्य एवं रचनाकारों से परिचित कराना इस संगोष्ठी का उद्‌देश्य रहा है। संगोष्ठी के आयोजन में हमारा उत्साह इस कारण बढ़ गया कि विभिन्न शोधार्थी, अध्यापक तथा विद्‌वानों से सकारात्मक प्रतिसाद मिला। शिवाजी विश्वविद्‌यालय, कोल्हापुर के हिंदी विभाग की अध्यक्षा प्रो. डॉ. पद्‌मा पाटिल जी, डॉ. अमर ज्योति, डॉ. वसंत सुर्वे, डॉ. देविदास इंगळे, डॉ. माधवी जाधव, प्रा. जयवंत जाधव, डॉ. मोहन सावंत, प्रा. सिकंदर तहसीलदार, प्रा. सुनील बनसोडे, शिवाजी विश्वविद्‌यालय, कोल्हापुर के हिंदी अध्ययन मंडल के अध्यक्ष डॉ. रघुनाथ देसाई, प्रा. माधव मुंडकर ने संगोष्ठी में उपस्थित रहने की अनुमति प्रदान कर हमें कृतार्थ किया। विभिन्न विद्‌वानों ने इस संगोष्ठी के लिए अपने शोध पत्र प्रस्तुत किए।

हमारे महाविद्यालय के प्रधानाचार्य डॉ. मिलिंद हुजरे जी के कुशल मार्गदर्शन और प्रोत्साहन के कारण आयोजन सुचारु रूप से हो पाया। प्रबंधन समिति और महाविद्‌यालय के सभी सेवकगण के प्रयास इस संगोष्ठी को सफल बनाने में सहायक सिद्‌ध हुए। मैं आयोजन में सहयोग देने वाले सभी महानुभावों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए यह आशा करता हूँ कि यह इतिवृत्त हिंदी आँचलिक साहित्य के बारे में छात्रों की जिज्ञासा की पूर्ति करते हुए इस विषय में शोध की नई दिशाओं को उजागर करेगा।

धन्यवाद!

संपादक
प्रा. शहाजी जाधव
अध्यक्ष, हिंदी विभाग,
डी. के. ए. एस. सी. कॉलेज, इचलकरंजी

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

अनुक्रमणिका

अ. क्र.	आलेख का नाम	लेखक का नाम
1.	स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आँचलिक उपन्यास	डॉ. गिरीश काशिद
2.	'पिंजरे में पन्ना' उपन्यास में लोकसंस्कृति	डॉ. सुरेश शिंदे
3.	आँचलिक उपन्यासों में लोकसंस्कृति के विविध आयाम	डॉ. नारायण केसरकर
4.	आँचलिक उपन्यासों में मूल्य एवं सांस्कृतिक परिदृश्य	डॉ. संजय चिंदगे
5.	हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में लोकसंस्कृति (फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' के संदर्भ में)	डॉ.वंदना मोहिते
6.	फणीश्वरनाथ रेणु के आँचलिक उपन्यासों में लोकसंस्कृति	डॉ. सरोज पाटिल
7.	लोकसंस्कृति और आँचलिक उपन्यास	डॉ. आरिफ महात
8.	कन्नड़ के आँचलिक उपन्यासों की विशेषताएँ	डॉ. तारू पवार
9.	मैत्रेयी पुष्पा के आँचलिक उपन्यास ('इदन्नमम्' के पुरुष पात्रों के संदर्भ में)	डॉ. मीनाक्षी कुरणे
10.	आँचलिक उपन्यास का महत्व	डॉ. हणमंत सोनी
11.	नागार्जुन के उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ' का आँचलिक शिल्प	डॉ. दिलीप भोसले
12.	हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में लोकसंस्कृति (उपन्यासकार नागार्जुन के संदर्भ में)	डॉ. उत्तम आळतेकर
13.	हिंदी के आँचलिक उपन्यासों की विशेषताएँ	डॉ. मारुती यमुलवाड
14.	'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में चित्रित लोकसंस्कृति	डॉ. संदीप कीर्दत
15.	कृष्णा सोबती का आँचलिक उपन्यास ('जिंदगीनामा' में लोकसंस्कृति)	डॉ. हेमलता पाटिल
16.	हिंदी के आँचलिक उपन्यास और उनका महत्त्व	डॉ. रविंद्र पाटिल
17.	आँचलिक उपन्यासों में राष्ट्रीयता	डॉ. मनिषा जाधव
18.	हिंदी के आँचलिक उपन्यासों की विशेषताएँ ('आधा गाँव' के संदर्भ में)	डॉ. विनायक कुरणे
19.	मिथिलेश्वर के उपन्यासों में चित्रित लोकसंस्कृति	डॉ. श्रीकांत पाटिल
20.	समता, स्वतंत्रता, संघर्ष की महागाथा 'बाजत अनहद ढोल'	प्रा. संजय नईनवाड

21.	आँचलिक उपन्यासों की शिल्प विधि	प्रा अजयकुमार कांबळे
22.	आँचलिक उपन्यासों की शिल्प विधि	प्रा. लीला भिंगारदेवे
23.	हिंदी साहित्य में आँचलिक उपन्यास का योगदान	प्रा. पांडुरंग कामत
24.	हिंदी के आँचलिक उपन्यास	प्रा. एस. के. खोत
25.	हिंदी के आँचलिक उपन्यास और उनका महत्त्व	प्रा. विकास विधाते
26.	'मैला आँचल' में युग चेतना	प्रा. रविदास पाडवी
27.	हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में लोकसंस्कृति	प्रा. माधुरी पाटिल
28.	आँचलिक उपन्यासों की विशेषताएँ	प्रा. हिरामण टोंगारे
29.	'मैला आँचल' का महत्व	प्रा. सुचिता भोसले
30.	'बलचनमा' आँचलिक उपन्यास में ग्राम जीवन की समस्याएँ	प्रा. नितिन पाटिल
31.	विशिष्टता की पहचान है–आँचलिकता	डॉ. दीपक तुपे
32.	हिंदी के आँचलिक उपन्यास	वैशाली कांबळे
33.	The Regional Novel: A Diaspora Perspective	Mrs. Shailaja Changundi
34.	Regional Backdrop In The Novels Of R.K. Narayan	Mrs. Sunita Velhal

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी आँचलिक उपन्यास

-डॉ. गिरीश काशिद
एस. बी. झाडबुके महाविद्यालय, बार्शी।

हिंदी उपन्यास का उद्भव उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में हुआ। इसका प्रारंभिक रूप उपदेशात्मक एवं मनोरंजन प्रधान रहा है। प्रेमचंद ने इसे मानवीय धरातल पर लाकर उपन्यास के माध्यम से समाज जीवन के विविध आयामों को प्रस्तुत किया है। स्वातंत्र्योत्तर भारतीय जीवन में बहुमुखी परिवर्तन दिखाई देता है। इसमें एक ओर भौतिक प्रगति दिखाई देती है तो दूसरी ओर मानवीयता का ऱ्हास। उपन्यास जीवन के समांतर चलनेवाली विधा है। इसी कारण प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यासों में इस परिवर्तित जीवन की अभिव्यक्ति स्वाभाविक रूप में हुई है। उपन्यास एक जनतांत्रिक विधा होने से इसमें मानव जीवन के गहरे भाव बोध, दर्शन, मूल्य और युगीन समस्याओं का चित्रण मिलता है। अपनी विकास यात्रा में उपन्यास विधा ने जिन प्रकारों को प्रस्तुत किया, उसमें आँचलिक उपन्यास अपनी अलग और महत्वपूर्ण पहचान रखता है। वैसे तो आँचलिकता की प्रवृत्ति ने विश्व साहित्य को प्रभावित किया है, हिंदी साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा है। यूरोपीय उपन्यासकार मारिया एजवर्थ, सर वॉल्टर स्कॉट, थॉमस हार्डी और अमरीकी उपन्यासकार मार्कट्वेन, अर्नेस्ट हेमिंग्वे आदि ने आँचलिकता को ऊँचाई तक पहुँचाया। भारत की प्राकृतिक-सांस्कृतिक विविधता एवं समृद्धता के तहत भारतीय साहित्य में आँचलिकता का स्वागत एवं प्रसार बहुमुखी रूप में हुआ है। उपन्यास के उद्भव की तरह भारतीय साहित्य में बांगला साहित्य अग्रणी है। भारतीय साहित्य में आँचलिकता का उद्भव पश्चिम में इस प्रवृत्ति के उत्थान-विलय के बाद होता है। भारतीय साहित्य में आँचलिक उपन्यास को पश्चिम से प्रेरणा मिली, लेकिन उसका विकास यहाँ की देशीय प्रकृति के अनुरूप हुआ है। ''अपने सर्वांगीण रूप में आँचलिक उपन्यास भारतीय है, उसकी कला और शिल्प इसका प्रमाण है।''[1]

स्वातंत्र्योत्तर काल में अनेक स्थित्यंतर पाए जाते हैं। जीवन के साथ साहित्य में भी परिवर्तन मिलता है। बदलते संदर्भों को समेटने के लिए साहित्य में विभिन्न प्रवृत्तियाँ अवतरित हुई। राजनीतिक-सामाजिक जागरण, व्यक्तिवाद और कृत्रिमता का विरोध, जटिल परिवेश, पतनोन्मुख राजनीति, सांस्कृतिक विघटन, राष्ट्रीयता का क्षय, प्रांतीय भावना, नई संवेदना, प्रकृति के प्रति रूझान, पिछड़े जीवन का उद्घाटन, लोकसंस्कृति का अन्वेषण जैसे संदर्भों ने आँचलिक उपन्यास के उद्भव के लिए उर्वर भूमि तैयार की। परिणामस्वरूप एक अनिवार्यता के रूप में

आँचलिक उपन्यास का उद्भव हुआ। यह प्रतिक्रिया, अनुकरण न होकर एक सर्जनात्मक पहल है।

हिंदी साहित्य में इस प्रवृत्ति ने उपन्यास विधा को अत्यधिक प्रभावित किया। स्वातंत्र्योत्तर उपन्यास साहित्य दो दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें युगीन जीवन के सत्य का उद्घाटन हुआ है और दूसरे देश के उपेक्षित अँचलों को भी वाणी मिली है। इन उपन्यासों ने कथ्य एवं शिल्प में क्रांतिकारी परिवर्तन प्रस्तुत किया है। आँचलिक उपन्यास ने अपनी विकास यात्रा में अनेक नई मान्यताएँ स्थापित की हैं। आँचलिक उपन्यास के उद्भव को लेकर विद्वानों में मतभिन्नता मिलती है। अधिकांश विद्वान इसे स्वातंत्र्योत्तर परिवेश की उपलब्धि मानते हैं। डॉ. बंसीधर के मतानुसार, ''स्वतंत्रता प्राप्ति और उसके पश्चात के कुछ ही वर्षों में हमारे बदलते सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन संदर्भों की अनिवार्य अभिव्यक्ति का परिणाम हिंदी का आँचलिक उपन्यास कहा जा सकता है।''[2] वैसे साहित्य में कोई भी प्रवृत्ति अचानक अवतरित नहीं होती। हिंदी में प्रेमचंद, वृंदावनलाल वर्मा, नागार्जुन आदि के उपन्यासों ने आँचलिक उपन्यास के उद्भव के लिए पृष्ठभूमि निर्माण करने का कार्य किया। लेकिन हिंदी में विशुद्ध आँचलिक उपन्यास का उद्भव स्वांतत्र्योत्तर काल में ही हुआ। आँचलिक उपन्यास का नामकरण और उद्भव सन् 1954 ई. में प्रकाशित रेणु के 'मैला आँचल' उपन्यास की भूमिका से हुआ। इस दृष्टि से 'मैला आँचल' की भूमिका द्रष्टव्य है, ''यह है 'मैला आँचल'। एक आँचलिक उपन्यास। ... इसमें फूल भी है शूल भी, धूल भी है गुलाल भी-मैं किसी से भी दामन बचाकर निकल नहीं पाया।''[3] रेणु ने प्रथमत: हिंदी साहित्य को आँचलिक शब्द और आँचलिक उपन्यास दिया। दरअसल इस उपन्यास का प्रथम प्रकाशन सन् 1952 ई. में ही हुआ था। इसके प्रकाशन के बाद ही आँचलिक उपन्यास एक आंदोलन के रूप में उभरा। इसी वर्ष नागार्जुन का 'बलचनमा' और शिवप्रसाद रूद्र का 'बहती गंगा' उपन्यास प्रकाशित हुए। अत: यह स्पष्ट है कि 1952 यह वर्ष हिंदी आँचलिक उपन्यास के उद्भव की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। रेणु और उनका 'मैला आँचल' आँचलिक उपन्यास के विकास में मील के पत्थर हैं। अत: आँचलिक उपन्यास का अध्ययन उन्हीं के परिप्रेक्ष्य में देखना समीचीन है।

रेणु पूर्व युग (1893-1951) आँचलिक उपन्यास के विकास में बीजवपन काल है। इस युग में प्रेमचंद और उनकी परंपरा के उपन्यासों का निर्वाह अधिक मात्रा में हुआ है। इस युग में विशुद्ध आँचलिक उपन्यास नहीं मिलते। भुवनेश्वर मिश्र के 'धराऊ घटना' (1893) और

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

'बलवंत भूमिहार' (1926), मन्नन द्विवेदी का 'रामलाल'(1914), शिवपूजन सहाय का 'देहाती दुनिया' (1926), मुंशी प्रेमचंद का 'गोदान' (1936), निराला का 'बिल्लेसूर बकरीहा' (1941), वृंदावनलाल वर्मा के 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' (1946) और 'कचनार'(1947), नागार्जुन का 'रतिनाथ की चाची' (1944) आदि उपन्यासों में आँचलिकता के कुछ तत्वों का निर्वाह मात्र मिलता है। इनमें आँचलिक उपन्यास का प्रारंभिक रूप देखा जा सकता है। इस काल के उपन्यासों को आँचलिक उपन्यास नहीं कह सकते। यह आगे उद्भव होने वाले आँचलिक उपन्यास को देशीयता का संदर्भ मात्र देते हैं।

रेणु युग (1952-1966) आँचलिक उपन्यास का उत्कर्ष काल है। रेणु का 'मैला आँचल' उपन्यास इस परंपरा की न केवल शुरुआत करता है, अपितु उसे उत्कर्ष तक पहुँचाता है। '' 'मैला आँचल' हिंदी उपन्यास साहित्य में जिस आँचलिकता की नई शुरुआत करता है, उस शुरुआत की यह चरम उपलब्धि है।''[4] दरअसल यह रेणु की संचित अनुभूतियों का प्रखर प्रस्फुटन है। इसमें सन् 1942 से 1950 के आसपास के भारतीय ग्रामीण परिवेश का यथार्थ चित्रण मिलता है। इसके बाद हिंदी में आँचलिक उपन्यास की एक लंबी परंपरा मिलती है। रेणु युग में अनेक आँचलिक उपन्यास लिखे गए। इस युग में लिखे आँचलिक उपन्यासों में नागार्जुन का 'बलचनमा' (1952), शिवप्रसाद रूद्र का 'बहती गंगा' (1952), देवेंद्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिए' (1953), उदयशंकर भट्ट का 'सागर लहरे और मनुष्य' (1955), फणीश्वरनाथ रेणु का 'परती परिकथा' (1957), रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' (1958), राजेंद्र अवस्थी का 'जंगल के फूल' (1960), राही मासूम रजा का 'आधा गाँव' (1966) आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं। इसके अलावा इस काल में गुलशेर खान शानी, भैरवप्रसाद गुप्त, नागार्जुन, योगेंद्रनाथ सिन्हा, शैलेश मटियानी, जयसिंह, मनहर चौहान, हिमांशु जोशी, श्याम परमार आदि ने आँचलिक उपन्यास लिखे। इन उपन्यासकारों ने आँचलिक उपन्यास की धारा को समृद्ध करने में अहम योगदान दिया है। उन्होंने देश के विभिन्न आँचलों को साहित्य में मूर्त दिया।

रेणु युग में आँचलिक उपन्यासों का विविधोन्मुखी विकास हुआ है। ग्रामांचल से आरंभ हुई उसकी यात्रा पहाड़ी, सरिता, सागर, जनजातीय और नगर अँचल तक पहुँची हुई है। इन उपन्यासों में अछूत क्षेत्रों का परंपरागत, अभावग्रस्त और पिछड़ा लोकजीवन रेखांकित हुआ है। इन्होंने लोकसंस्कृति के विविध आयामों को उद्घाटित किया है। इस युग में आँचलिक उपन्यास विविरणधर्मी और यथार्थवादी बन गया। रेणु के उपन्यास उद्भव के साथ उत्कर्ष को छूने की

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

क्षमता रखते हैं। 'मैला आँचल' ने कई लोकधर्मी रचनाकारों को प्रभावित किया है और अनेक अछूते अँचल उद्‌घाटित हुए हैं।

रेणु युग के बाद भी आँचलिक उपन्यास की धारा अबाध गति से बहती नजर आती है। रेणुत्तर युग (सन् 1967 के बाद) में आँचलिक उपन्यास नया तेवर ग्रहण करता है। इसमें परिवर्तनशील आँचलिक जीवन को तराशने की पहल मिलती है। रचनाकार पतन और टूटन से चिंतित मिलते हैं। इस दौर में भारतीय आँचलिक जीवन में भी काफी परिवर्तन मिलता है। इस काल में लिखे महत्वपूर्ण उपन्यासों में शिवप्रसाद सिंह का 'अलग अलग वैतरणी' (1967), श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' (1968), रामदरश मिश्र के 'जल टूटता हुआ' (1969) और 'सूखता हुआ तालाब (1972), जगदीश चंद्र के 'धरती धन न अपना' (1972) और 'कभी न छोड़े खेत' (1972), यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' का 'हजार घोडों का सवार' (1973), हिमांशु जोशी का 'कगार की आग' (1976), विवेकी राय के 'लोकऋण' (1977) और 'सोनामाटी' (1983), कृष्णा सोबती का 'जिंदगीनामा' (1979), मणि मधुकर का 'पिंजरे में पन्ना' (1981), हिमांशु जोशी का 'सु-राज'(1982), चंद्रकांता का 'ऐलान गली जिंदा है' (1984), ठाकुर प्रसाद सिंह का 'सात घरों का गाँव' (1985), अब्दुल बिसमिल्लाह का 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' (1986), शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष' (1989), संजीव का 'धार' (1990), वीरेंद्र जैन के 'डूब' (1991) और 'पार' (1994), कमलाकांत त्रिपाठी के 'पाहीघर' (1991) और 'बेदखल' (1997), रामदरश मिश्र का 'बीस बरस' (1996), भगवानदास मोरवाल का 'काला पहाड़' (1999), मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' (2000), संजीव का 'जंगल जहाँ शुरू होता है' (2000), मिथिलेश्वर का 'यह अंत नहीं' (2000), हरिराम मीणा का 'धूणी तपे तीर' (2008), भगवानदास मोरवाल का 'रेत' (2008), रणेंद्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता' (2008), श्रीप्रकाश मिश्र का 'जहाँ बाँस फूलते हैं' (2011), महुआ माझी का 'मरंग गोंडा निलकंठ हो गया' (2012) आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं।

बीसवीं सदी का उत्तरार्ध अत्यधिक जटिल बनता गया। भूमंडलीकरण के चलते केवल ग्रामीण-आँचलिक जीवन ही नहीं तो पूरा देश एक संक्रमण से गुजरा है। जीवन में पनप चुकी संवेदनशून्यता, दिशाहीनता, व्यावहारिकता, अंध आधुनिकता आदि को दूर कर समाज का दिशा-निर्देशन करने की चुनौती साहित्यकार के सामने खड़ी हो गई। बीसवीं सदी का अंतिम दौर विविध अंतर्विरोधों से भरा है। सदी के इस दौर में जितना परिवर्तन मिलता है उतना शायद ही

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

संपूर्ण सदी में हुआ होगा। इससे संपूर्ण भारतीय जनमानस उद्वेलित पाया जाता है। परिवर्तन के एक पक्ष ने जहाँ उन्नति के शिखर पर पहुँचाया वहाँ दूसरी ओर चहुमुखी विघटन की प्रक्रिया शुरू हुई। इसकी दस्तक अंतिम दशक के आँचलिक उपन्यास में देखने को मिलती है।

हमने इक्कीसवीं सदी में प्रवेश किया है, लेकिन देश का एक बड़ा तबका आज भी बीसवीं सदी में जी रहा है। इस दौर में भी हमारे यहाँ आँचलिक उपन्यासों का सृजन हो रहा है। इसका एक कारण हमारे देश में होने वाली सांस्कृतिक विविधता भी है। हिंदी में आँचलिक उपन्यास की एक सुदीर्घ और लंबी परंपरा मिलती है। आँचलिक उपन्यास ने अपनी विकास यात्रा के साठ साल पूरे किए हैं। इन साठ सालों में इसमें मात्र संख्यात्मक नहीं, अपितु गुणात्मक वृद्धि भी मिलती है। इस विधा ने हिंदी साहित्य को सशक्त और कालजयी रचनाएँ प्रदान कर हिंदी उपन्यास और भाषा को समृद्ध बनाया है। अनेक पिछड़े एवं अछूते अँचल तथा जन-जातियों के जीवन को वाणी दी है। इसने जीवन की ओर देखने का नया नजरिया विकसित किया है। कथ्य, भाषा, शैली और शिल्प की दृष्टि से नए आयाम उद्घाटित किए हैं। इस लेखन में अनुभूतिजन्य यथार्थतता की कसमसाहट मिलती है। इसमें पिछड़े क्षेत्रों का यथार्थ, संघर्षशीलता, बदलते संदर्भ, टूटन, सांस्कृतिक परिवर्तन, नई मानसिकता, आक्रोश, व्यवस्थागत विसंगतियाँ, गरीबी, अशिक्षा, शोषण, कुरीतियाँ, राजनीतिक पतन, चरमराता पारिवारिक ढाँचा, यौन विकृतियाँ आदि का विवेचन हुआ है। अनेक पिछड़े एवं अछूते अँचल तथा जनजातियों के जीवन को वाणी दी है। इसमें एक ओर आधुनिकता और प्राचीनता की टकराहटें, सामंती मानसिकता, औद्योगीकरण का प्रभाव, नगरोन्मुखता, प्राकृतिक विपदाएँ, चुनाव, टूटन, सांस्कृतिक विघटन, अंधविश्वास जैसे संदर्भों का अंकन हुआ है तो दूसरी ओर इन उपन्यासों में मौलिक कथ्य, विषय वैविध्य, स्थानीय रंगत, सामूहिक चेतना, लोकतंत्र का रचनात्मक पक्ष, समाजशास्त्रीय दृष्टि, लोकसाहित्य का अंकन, व्यक्तिवाद का विरोध, सामूहिक चेतना, राष्ट्रीय जागरण, जनचेतना, समाज, सांस्कृतिक अन्वेषण, आँचलिक भाषा, संघर्षशीलता, अस्मिता, नई मानसिकता, वैज्ञानिक रूझान, भावात्मक एकता, प्राकृतिक सुषमा, नवनिर्माण की ललक, प्रगति की कामना, अन्याय का विरोध, प्रगतिशीलता, मानवतावाद आदि का कमोबेश विवेचन मिलता है।

इन उपन्यासों ने स्वातत्र्योत्तर जीवन के विविध आवर्तों को प्रस्तुत किया है। अतीत और वर्तमान की कड़ी को जोड़ने का प्रयास किया है। इसमें जीवन की बुनियादी सच्चाइयों का अन्वेषण मिलता है। इसने आम आदमी के जीवन स्पंदनों को वाणी दी है। नकाबपोश अभिजात्य

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

से विद्रोह कर उपेक्षितों का पक्ष लिया है। यह उपन्यास वर्णित क्षेत्रों के तत्कालीन सामाजिक दस्तावेज हैं। सांस्कृतिक अन्वेषण का अहम कार्य इन उपन्यासकारों ने किया है। इसके पीछे भावात्मक एकता की विश्वव्यापी मानसिकता कार्यरत है। यह जड़ों की खोज हैं। हमारे लोकजीवन में लोकगीत, लोककथा, लोकनाट्य, लोकसंगीत, लोकनृत्य, लोकभाषा का अनूठा कोश शेष है, जिसको इन उपन्यासकारों ने समेटने का प्रयास किया है। इसी कारण यह उपन्यास हमारी सांस्कृतिक धरोहर के पवित्र स्तंभ हैं। यह हमारी सामर्थ्य, पहचान एवं उपलब्धियों के स्मारक हैं।

आँचलिक उपन्यासों में सामाजिक जीवन के विविध आयामों का गहराई से अंकन मिलता है। इन उपन्यासों में सामाजिक विसंगतियों का यथार्थ अंकन मिलता है। यह उपन्यास विकास की धारा से अलग रहे समाज का जीवन प्रस्तुत करते हैं। इन उपन्यासकारों ने सदियों से उपेक्षित आदिवासी जीवन की व्यथा को वाणी दी है। इससे आँचलिक उपन्यास का जन-जातिमूलक आँचलिक उपन्यास नामक प्रकार सामने आता है। आँचलिक उपन्यासकारों की दृष्टि समाजशास्त्रीय है। आत्मीयता आँचलिकता का एक महत्वपूर्ण अभिधान है। आँचलिक उपन्यासकारों ने कथ्य एवं पात्रों के माध्यम से इसे संवेदनात्मक धरातल पर प्रस्तुत किया है। उपन्यासकारों की बदलते परिवेश और संक्रमण को पकड़ने की कोशिश उल्लेखनीय हैं।

इन उपन्यासों का क्षेत्र सीमित होने के बावजूद उद्देश्य व्यापक है। उपन्यासकारों ने सामाजिक सुगबुगाहट को गहराई से आँका हैं। जीवन मूल्यों के संघर्ष के प्रति उनमें गहरी रागात्मकता है। ये उपन्यास बदलते संदर्भों में मूल्यों को बचाये रखने का संदेश देते हैं। आँचलिक उपन्यासकार हाशिये पर जीवन जीने वाले लोगों की वकालत करता है। वह अपने दायित्व के प्रति पूर्णत: सजग रहता है। चौतरफा टूटन, संवेदनहीनता और मूल्य विघटन से उसमें बेचैनी पाई जाती है। कथा चाहे अतीत की पृष्ठभूमि पर हो या वर्तमान समस्याओं के रूप में; लेकिन आँचलिक उपन्यासकार उसका सामाजिक-सांस्कृतिक धरातल पर अन्वेषण करते हैं। उनमें सामाजिक सरोकार के सृजनात्मक प्रतिफलन की आकांक्षा मौजूद है। आँचलिक उपन्यासकार अँचल और आँचलिक जीवन को सैलानी प्रवृत्ति से नहीं देखता। वह अतीत की धरोहर का कोरा आलाप नहीं करता तो समकालीन संकट बोध से चिंतित है।

आँचलिक उपन्यासों का भाषाई योगदान भी महत्वपूर्ण है। अँचल विशेष के जीवन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हेतु इन उपन्यासों में आँचलिक भाषा का सर्जनात्मक प्रयोग हुआ है।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

लोक उपादानों के प्रयोग से रोचकता, जीवंतता एवं बिंबात्मकता का निर्वाह हुआ है। इसने एक ओर जनभाषा और बोलियों को साहित्यिक गरिमा प्रदान की है तो दूसरी ओर हिंदी भाषा को भी संपन्न किया है। इससे भाषिक सरंचना के नए आयाम उद्‌घाटित हुए हैं। जनपदीय भाषाओं ने हिंदी भाषा को नई अर्थवत्ता एवं प्राणवत्ता दी है। धरती से उपजी भाषा एवं शब्दों में नई गंध, स्पर्श, रंग, ध्वनि, चित्र और बिंब विद्‌यमान है। स्थानीय भाषा के प्रयोग से इसमें सौंदर्यात्मक वृद्‌धि हुई है। इन उपन्यासों में प्रयुक्त भाषा स्थल और काल दोनों से परिचय कराती है। इसमें सर्जनात्मकता है। यह हिंदी भाषा का एक महत्वपूर्ण उपादान है।

कथ्य और शिल्प की दृष्टि से भी इन उपन्यासों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों में आए गतिरोध को तोड़ने का कार्य 'मैला आँचल' उपन्यास ने किया है। इससे आगे चलकर आँचलिक उपन्यास की धारा को गति मिली। ये उपन्यास रचनात्मक जमीन की तलाश करते हैं। इसके कथ्य में नवीनता और मौलिकता है। उसने कथ्य के अनुरूप भाषा और शिल्प को अपनाया है। पहली बार इन उपन्यासों में लोकसाहित्य का सर्जनात्मक प्रयोग हुआ। इनमें नए प्रतीक, बिंब और ध्वनियाँ प्रयुक्त हुई है। इनकी बुनावट में नवीनता और मौलिकता है। इसी कारण डॉ. सुरेश सिन्हा लिखते हैं, ''आँचलिक उपन्यासकारों ने हिंदी उपन्यास शिल्प को नए संदर्भ दिए तथा गतिशील परिप्रक्ष्य में अँचल विशेष की समग्र विशेषताओं को प्रस्तुत कर निश्चय ही एक ताजगी और नयापन दिया है।''[5] कथागत बिखराव, अँचल को नायकत्व, लोकसाहित्य का प्रयोग, अनुभूतिजन्य यथार्थ, सीमित क्षेत्र का गहराई से अंकन, आँचलिक भाषा का प्रयोग, अनुभूतिजन्य यथार्थ, फोटोग्राफिक शैली, वृत्तात्मकता, लोकतत्व आदि तत्वों ने इसे अलग साँचे में ढाल दिया है। इसकी संरचना अपनी निजी और मौलिक है।

इन उपन्यासों की अपनी सीमाएँ भी रही हैं। सीमित फलक, प्राकृतिक परिवेश, आँचलिक भाषा और लोकसाहित्य का प्रयोग, दुर्बोधता, भावुकता, आदर्शवादिता जैसी इसकी त्रुटियाँ दिखाई गई है। साथ ही इस पर प्रांतीयता, दुर्बोधता, संकुचित दृष्टि, राष्ट्रीय एकता में बाधा जैसे कई आरोप भी लगाए गए हैं; जिसे पूर्णत: सत्य तो नहीं कहा जा सकता। इसकी अपनी निजी प्रकृति एवं माँग है। इसकी सीमाएँ ही इसका सामर्थ्य है। इसे समजने के लिए इसकी निजता को उदारता से समझना आवश्यक है। इस संदर्भ में डॉ. बच्चन सिह का मत समीचीन है, ''जो नहीं है उसकी चर्चा व्यर्थ है, जो है वह तो विवेचनीय है।''[6] इसकी जो आलोचना हुई उसमें इसे सराहा कम और प्रताड़ित अधिक किया है। अनेक लोकधर्मी कलाकर गुटबंदी और एकांगी मानसिकता

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

से उपेक्षित रह गए हैं। आँचलिक उपन्यास की ग्रामांचल से शुरू हुई यात्रा ने आगे चलकर देश के विभिन्न अँचलों का उद्घाटन किया है। भारत जैसे प्राकृतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से संपन्न देश में इसके विकास की और भी संभावनाएँ हैं।

➢ **संदर्भ ग्रंथ सूची:**

1. डॉ. आदर्श सक्सेना, हिंदी के आँचलिक उपन्यास और उनकी शिल्पविधि, पृ.-345
2. डॉ. बंसीधर, हिंदी के आँचलिक उपन्यास : सिद्धांत और समीक्षा, पृ.-9
3. फणीश्वरनाथ रेणु, मैला आँचल, भूमिका से उद्धृत।
4. नामवर सिंह, आलोचना, दिसंबर, 1988, पृ.-55
5. डॉ. सुरेश सिन्हा, हिंदी उपन्यास, पृ.-157
6. डॉ. बच्चन सिंह, आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ.-347

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

'पिंजरे में पन्ना' उपन्यास में लोकसंस्कृति

- डॉ. सुरेश शिंदे
पी. डी. वी. पी. कॉलेज, तासगांव।

प्रस्तावना:

मणि मधुकर लिखित 'पिंजरे में पन्ना' उपन्यास में राजस्थान के लोक जीवन और लोककला पर प्रकाश डाला है। इसमें राजस्थान की धरती में यायावर जीवन जीने वाले गाड़िया लुहार और ख्याल कलाकारों के जीवन को चित्रित किया गया है। इन लोगों के जीवन में अपनी निजी पहचान, मूल्य एवं संस्कृति है। इसमें सिर्फ उनके जीवन का चित्र ही नहीं, बल्कि उनके आंतरिक जीवन तक पहुँचने का प्रयास है। इसमें गाड़िया लुहार, ख्याल की नायिका पन्ना और नंदे, रम्या लोककला की गवेषणा का लोकजीवन तथा लोकसंस्कृति का वर्णन है।

'पिंजरे में पन्ना' में लोकसंस्कृति के अनेक आयाम उद्घाटित हुए हैं। इस निम्न वर्ग के लोगों में प्रथा-परंपरा तथा अनेक रीति-रिवाज हैं, जिनका वे अत्यंत श्रद्धा से पालन करते हैं। पहला मुकाम छोड़कर जब वे दूसरे स्थान पर चले जाते हैं तो कार्य आरंभ करने से पहले पूजा करते हैं। इसके पीछे कर्म निष्ठा और आस्था होती है। ''जब डेरा उखड़ता है तो पहले पड़ाव पर शस्तर धोये-माँजे जाते हैं उन पर रौली लगाई जाती है।''[1] फिर कड़ी मेहनत में लग जाते हैं। पुरुष नारी दोनों एकजुट होकर काम करते हैं। उनके रहन-सहन और खान-पान में सीधापन झलकता है। भोजन में बाजरी की रोटी, सांगरी का आचार, लहसून की चटणी होती है। गर्मी के कारण जवरी से बनाई शराब पीते हैं। सेहत के लिए शराब अच्छी मानी जाती है। पुरुष, नारियाँ दोनों शराब पीते हैं। उनका भरोसा होता है कि इससे ''आँत साफ रहती है और अक्ल भी।''[2] ये लोग ढिले कपड़े पहनते हैं।

राजस्थान के लोगों के जीवन में प्रचलित लोक कथाओं पर बहुत विश्वास है। गाड़िया लुहारों का साहस, संघर्षमय जीवन, प्रचलित लोककथा के माध्यम से सामने आता है। रस कुँवारी की कथा के माध्यम से नारियों की प्रसाधन प्रियता एवं पीड़ा सामने आती है। अन्य लोककथाओं में सुनार की चतुराई, हीरा और पारस, डेढ़ छैल की नगरी का उल्लेख मिलता है। ख्याल-लोकनाट्य का तो राजस्थान के लोग जीवन में अनन्य साधारण महत्व है। लोकसंगीत का भी इसमें प्रयोग मिलता है। यहाँ के धरती के कण-कण में लोकसंगीत समाया है। गाड़िया लुहारों के साथ बैलगाड़ी से यात्रा करते समय रम्या इसे नजदीक से महसूस करती है,''गाड़ी के कोने में बैठी रम्या कभी अचानक अमजद अली का सरोद सुनकर चौंक उठती थी... इस तरह बालू के उन टीलों की संगत करते हुए रम्या ने शिवकुमार से संतूर सुना, ब्रजभूषण काबरा से गिटार और रविशंकर से सितार भी वह एक आश्चर्य लोक में थी... जहाँ जमीन की कोख से संगीत फूटता था टुकड़ो-टुकड़ों में।''[3] ख्याल लोकनाट्य लोकजीवन में लोकप्रिय है। इसके माध्यम से पन्ना

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

लोकजीवन में अपना अमिट स्थान निर्माण करती है। यहाँ की लोकसंस्कृति मूलत: संस्कृति का मूल स्त्रोत है। इसी कारण शमीक बाबू, आनंद सोनटक्के और रम्या संस्कृति के खोज में अपना जीवन समर्पित करते हैं। बंगाली शमीक बाबू यहाँ की मिट्टी से रागात्मक रिश्ता रखते हैं। लोकधर्मी नाट्यकला के अध्ययन में अपनी पूरी जिंदगी बिताते हैं। नंदे के रूप में पेश किया आनंद सोनटक्के तो लेखक की एक महत्वपूर्ण सष्टि है। वह गाड़िया लुहार बनकर जीवनयापन करता है जो कथा में प्रारंभ से अंत तक रहता है। वह अपना लोहारखाना कड़ी मेहनत करके चलाता है। उसकी चित्रकला भी अपनी अनूठी पहचान रखती है। तलमाटी, पत्तियाँ, पौधे और ख्याल के घोल से बनाए चित्रों में प्रत्यक्ष जीवन झलकता है। इन रेखाचित्रों से प्रत्यक्ष जीवन प्रतिबिंबित होता है।

प्राकृतिक परिवेश में जीवनयापन करनेवाले यहाँ के लोकजीवन में स्वाभाविकता पाई जाती है। कृत्रिमता और छल-छद्म से वह पूर्णत: दूर है। अतिथ्यशीलता इस संस्कृति की विशेषता है। इस माटी का वह संस्कार है। बुज्जी अपरिचित रम्या पर पुत्रवत प्रेम करती है। बुज्जी की बेटी दीवी भी इससे ईर्ष्या न कर उसके लिए भगवान से सुख और शांति की कामना करती है। एक-दूसरे के लिए ये लोग मर-मिटने को तैयार होते हैं। इनके जीवन में मानवीयता, प्रेम, समर्पण और परदु:खकातरता है। ये लोग स्वयं के लिए कम दूसरों के लिए अधिक जीते हैं। ये लोग मनुष्य पर प्रेम करते हैं, पर अपने बैलों पर भी प्रेम करते हैं। बुज्जी बैलों के साथ रागात्मक रिश्ता रखती है। जितनी कहानियाँ वे जानते हैं वे सब इन बैलों को सुनाती हैं अर्थात् यहाँ स्पष्ट है कि इसके जीवन में आस्था, प्रेम, संवेदना, मानवीयता और स्वाभाविकता है।

निष्कर्षत: कहा जाता है कि लोकजीवन की नारी सामंती वर्ग से शोषित पाई जाती है। फिर भी शोषण और अन्याय के प्रति चेतना भी पाई जाती है। निम्न वर्ग के लोगों में अनेक प्रथा परंपराएँ हैं; जिनका वे आत्मीयता से पालन करते हैं। यहाँ के लोगों की दूसरों को मदद करने की भावना है। परदु:खकातरता है, मानवीयता है, प्रेम है। राजस्थान की संस्कृति में कार्य आरंभ करने से पहले पूजा की जाती है। पुरुष, नारियाँ उसमें शामिल होती हैं। ख्याल लोकनाट्य इनके जीवन का एक अभिन्न अंग है। उसमें लोकसंगीत होता है। इनके जीवन में स्वाभाविकता है, छल कपट नहीं। सार यह कि मणि मधुकर कृत 'पिंजरे में पन्ना' उपन्यास लोकजीवन और लोकसंस्कृति की सच्ची तस्वीर है।

➢ **संदर्भ ग्रंथ सूची :**

1. मणि मधुकर, पिंजरे में पन्ना, पृ.-53
2. वही, पृ.-52
3. वही, पृ.-71

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

आँचलिक उपन्यासों में लोकसंस्कृति के विविध आयाम

– डॉ. नारायण केसरकर
प्रा. डॉ. एन. डी. पाटिल महाविद्‌यालय, मलकापुर।

प्रस्तावना :

कृषि प्रधान देश भारत की लगभग 70 प्रतिशत जनता किसान है क्योंकि भारतीय जीवन तथा सभ्यता का मूल स्रोत कृषि ही है और उसका विस्तार ग्रामीण जीवन में ही दिखाई देता है। ग्रामीण समाज में लोकसंस्कृति विरासत के रूप में प्राप्त होती है। इस लोकसंस्कृति के आधार पर समाज अपने जीवन–क्रम को निर्धारित करता है। लोकसंस्कृति के विविध आयाम होते हैं। इसके अंतर्गत धार्मिक क्रियाएँ, ईश्वर, देवी–देवताओं, अंधविश्वासों, बाह्‌याचार, सांप्रदायिकता आदि बातों का समावेश होता है। इन सारी बातों का चित्रण लोकसंस्कृति के अंतर्गत हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में बखूबी किया गया है। हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में लोकसंस्कृति के विविध आयाम इस प्रकार है।

धार्मिक आस्था: धार्मिक आस्था लोकसंस्कृति का मूलाधार है, जिसका ग्रामीण सामाजिक जीवन पर गहरा प्रभाव दिखाई देता है। ग्रामीण जीवन का कोई भी अंग धार्मिक आस्था से अछूता नहीं रहता। उनका पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन उनकी धार्मिक आस्था से परिचालित होता है। ग्रामीण जीवन में व्याप्त धार्मिक आस्था का उल्लेख 'परती परिकथा', 'अलग–अलग वैतरणी', 'जल टूटता हुआ', 'नदी फिर बह चली' आदि आँचलिक उपन्यासों में हुआ है। ''जाजमनी गुरुदेव की समाधि की माटी से हवेली की चौहट्‌टी को बाँधती है। वह काली की पूजा भी करती है। करैता के देवीधाम पर जुड़नेवाला सालाना रामनवमी का मेला, तिवारीपुर का दशहरा का मेला, साधु–महंतों का बाबा हरिहरनाथ के मंदिर में दूध बढ़ाना आदि इसके परिचायक हैं।''[1]

पूजा–पाठ में विश्वास: भारतीय ग्रामीण समाज में देवी–देवता और पीर–पैगंबर की पूजा–पाठ में विश्वास किया जाता है। विशिष्ट अवसरों पर उनकी पूजा करते हैं, जिनका वर्णन हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में मिलता है। कहीं बरहम बाबा को फूल–पितरों को गाय का पिंड तो बाबा कुबेरनाथ को घी–दूध चढ़ाया जा रहा है।

अंधविश्वास और अज्ञान: भारतीय ग्रामीण समाज में भूत–प्रेत तथा अन्य अंधविश्वास में गहरी आस्था दिखाई देती है। इसका कारण अशिक्षा ही उनका अज्ञान है। इन बातों का वर्णन हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में बहुत मात्रा में मिलता है। ''नजर न लग जाए इसके लिए गाय के गले में

काला डोरा बाँधना, डाकिन के डर से बच्चों को दूसरों के घर में न जाने देना, ब्राह्मण को ब्रह्म-पिशाच मानना, ओझा द्वारा झाड-फूँक करवाना आदि अंध-श्रद्धाओं का चित्रण 'गोदान', 'बलचनमा', 'जल टूटता हुआ' और 'नदी बह चली' आदि उपन्यासों में विस्तृत रूप से दिखाई देता है।''[2]

सांस्कृतिक पर्व : ग्रामीण समाज में अनेक सांस्कृतिक प्रथाएँ प्रचलित हैं। उनमें मेलों-त्यौहारों को मनाने की प्रथा सबसे प्रमुख दिखाई देती है। हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में इनका बड़ा ही सजीव चित्रण हुआ है। कृषक का जीवन चाहे कितने ही दुःखों से भरा क्यों न हो, किंतु त्यौहार आदि को वे बहुत ही उत्साह-उमंग से मनाते हैं।

लोक-कथाएँ: लोक कथाएँ लोक मानस में प्रचलित होती हैं। वे लोक मानस में ही जीवित रहती हैं। ग्रामीण जीवन में प्रचलित लोक कथाओं का हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। नागार्जुन के 'बलचनमा' उपन्यास में राजा सगर की लोककथा आ गई है। उसी प्रकार 'परती परिकथा' में भी अनेक लोककथाओं का अंकन हुआ है। 'कोसी मैया की कथा, बदरिया घाट की कथा, कोहबर राँडी की कथा, परती की कथा, सुन्नरिका, शामा-चकेवा आदि लोककथाएँ परानपुर में प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त सुरंगा-सदाब्रिज, होरिलसिंह, धुधली-घटवार, कुमर-विज्जेमान, ढीला-मारू, चन्नरियाँ आदि गीत-कथाएँ वहाँ प्रचलित हैं।

लोक गीत: लोक गीत जन साधारण के जीवन के अभिन्न अंग होते हैं। वे लोक कंठ में ही जीवित रहते हैं। वे जन साधारण की यथार्थ अभिव्यक्ति के जीवंत उदाहरण हैं। हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में ग्रामीण जीवन के इस सांस्कृतिक पक्ष का जीवंत चित्रण हुआ है। 'बलचनमा' उपन्यास के लोक गीत में विरहिणी का पति परदेस गया है, इसलिए वह नायिका अपने भाग्य को कोस रही है। 'परती परिकथा' में विभिन्न त्यौहारों पर विविध लोक गीत गाए जाते हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि ग्रामीण समाज की आस्तिकता किसी एक के प्रति नहीं है। यह समाज मान्यताओं एवं अंधश्रद्धाओं से भरा है; जिसके मूल में उनकी अज्ञानता एवं वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव है। शिक्षा, विज्ञान, सामाजिक विघटन, शहरोन्मुखता, राजनीतिक प्रभाव, मूल्यानुसंक्रमण के कारण ग्रामीण समाज से धार्मिकता तथा सांस्कृतिकता विघटित हो रही है। फिर भी ग्रामीण समाज का इनके प्रति झुकाव रहा है।

➢ **संदर्भ ग्रंथ सूची:**

1. आँचलिक उपन्यासों में ग्राम्य जीवन, उत्तमभाई एल. पटेल, पृ.-50

2. वही, पृ.-51

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

आँचलिक उपन्यासों में मूल्य एवं सांस्कृतिक परिदृश्य

डॉ. संजय चिंदगे
दे. आ. ब. नाईक कॉलेज, चिखली।

प्रस्तावना :

आँचलिक उपन्यासकार अपने उपन्यासों में वर्णित विषय के आँचल का वर्णन करता है। उपन्यासकार उस क्षेत्र में प्रचलित रस्म-रिवाज, आचार-विचार, रहन-सहन, त्यौहार, विवाह, खान-पान, भाषाशैली, परंपरा, गरीबी, सांस्कृतिक छटा, लोक सांस्कृति का चित्रण करता है, जिससे पाठक उस आँचल की सांस्कृतिक परिदृश्य से परिचित हो जाते हैं।

आँचलिक उपन्यासों में धर्म, पाप, पुण्य: आज 'कम्प्यूटर' के युग में लोकजीवन पर धर्म की पकड़ मजबूत है। धर्म की यह पकड़ दो रूपों में द्रष्टव्य है। एक ओर बाह्याचार और पाखंड आदि से युक्त धर्म का स्वरूप है, जो मुख्यत: अभिजात वर्ग और बुर्जुआ वर्ग की तथाकथित संस्कृति का अंग है तो दूसरी ओर धर्म का वह स्वरूप है, जो जन-साधारण के 'अभ्युदय' और 'नि:श्रेयस' में अपनी मौन भूमिका निभाता रहा है। आँचलिक उपन्यासों में आचरणभ्रष्टता और अनैतिकता से जुड़े तथाकथित धर्म को एकदम अस्वीकार कर दिया है। 'मैला आँचल' में मठ और उससे संबंद्ध अनैतिकता का वर्णन विस्तार से हुआ है और यह सादृश्य है। रेणु दिखाना चाहते हैं कि सदाचार, ईश्वरोपासना और परोपकार आदि के केंद्र माने जाने वाले मठों का वास्तविक रूप क्या है? नए महंत द्वारा रामपियारी को सार्वजनिक रूप में रखैल के रूप में मान्यता देना पतन की चरमसीमा है। डॉ. इंद्रप्रकाश पांडेय ने मठ और महंत से जुड़े भ्रष्टाचार के इस बयान को यथार्थ दृष्टि से कमजोर माना है।

आँचलिक उपन्यासों में धार्मिक सहिष्णुता और सद्भाव: भारतीय संस्कृति में एक ओर 'विचारमुद्रा', 'सहिष्णुता' और 'सद्भाव' को महत्त्व दिया जाता है तो दूसरी ओर 'कट्टरता' या 'घृणा' का अस्वीकार किया जाता है। धर्म, संप्रदाय आदि के नाम पर किसी भी मानवता विरोधी कृत्य को भारतीय मनीषियों ने समर्थन नहीं दिया है। 'आधा गाँव' में मुहर्रम केवल मुसलमानों का पर्व नहीं है। मुहर्रम के ताजियों के साथ लट्ठबंद गिरोह चलता था; जो उलतियाँ गिराकर रास्ता बनाया करता था।

आँचलिक उपन्यास और सांप्रदायिकता: 'सांप्रदायिकता' की मनोवृत्ति मानवीय मूल्यों में धर्मनिरपेक्षता आदि के विरोध में पड़ती है। सांप्रदायिक शक्तियाँ अपने निहित स्वार्थों के लिए

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

जनसाधारण के आपसी सद्भाव, मेलजोल, मानवीयता आदि को दाँव पर लगा देती हैं। 'मैला आँचल' के 'मेरीगंज' में एक भी मुसलमान नहीं है, लेकिन काली टोपी वाले संयोजक जी कथित, म्लेच्छ संस्कृति के विरोध का वातावरण तैयार करने में लगे हैं। हिंदू सांप्रदायिकता का नारा है कि आर्यावर्त में केवल शुद्ध हिंदू या आर्य ही रह सकते हैं। मुस्लिम सांप्रदायिकता हिंदुओं की 'सिन्सिआरिटी' को मशकूक मानती हैं।

आँचलिक उपन्यासों में लोक संस्कृति और लोकगीत: लोकसंस्कृति के तत्त्वों को 'जंगली कल्चर' कहना उस मूल्य-संक्रमण का परिचायक है, जिसके तहत मानवीय उल्लास, निष्कपटता, वर्जनाविहीनता की परिणति एक कृत्रिम गंभीरता और सभ्यता में होती गई है। यह कथित सभ्यता हर तरह के अनाचार को अपने में छिपाए हुए है और उसे मुक्त लोकसंस्कृति के कुछ तत्त्व अश्लील और भदेस लगते हैं। आँचलिक उपन्यासकारों ने स्पष्ट किया है कि लोक-संस्कृति 'जंगली कल्चर' न होकर वस्तुत: जंगलियों को सुसंस्कृत और मानवीय बनाने का कार्य है।

निष्कर्षत: हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में सांस्कृतिक परिदृश्यों का सुंदर चित्रण हुआ है। पाठक तत्कालीन समाज व्यवस्था, सांस्कृतिक परिवेश से भलि-भाँति परिचित होते हैं। उपन्यासों में वर्णित आँचल में धर्म, पाप-पुण्य, धार्मिक सहिष्णुता और सद्भाव, सांप्रदायिकता, लोकसंस्कृति और लोकगीत के यथार्थ वर्णन से पाठक अवगत हो जाते हैं।

➢ **संदर्भ ग्रंथ सूची:**

1. फणीश्वरनाथ रेणु-मैला आँचल।
2. राही मासूम रजा-आधा गाँव।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में लोकसंस्कृति

(फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' के संदर्भ में)

- डॉ. वंदना मोहिते
महिला कॉलेज, उंब्रज।

प्रस्तावना :

आर्थिक परिस्थिति कमजोर होते हुए भी मेरीगंज गाँव के लोग अपनी संस्कृति तथा परंपरा से अलग नहीं होते। सालभर जिन त्योहारों एवं पर्वों को मनाया जाता है उन्हें ये लोग खुशी के साथ मनाते हैं। होली का त्यौहार इनके लिए बहुत महत्वपूर्ण त्यौहार है। इस समय ये लोग खूब नाचते हैं, गाते हैं। फागुआ का हर गीत देह में सिहरत पैदा करता है। होली के त्यौहार के कारण गाँव की फुलिया खलासी को अपने पति के साथ शहर जाने से साफ मना करती है। खलासी जब रूठकर जाने लगे तो फागुन की मस्ती में डूबी फुलिया गाँव के रमजूदास के आँगन में अपना मस्ती भरा गीत गाती है।

''नयना मिलानी करी ले ले सैया, नयना मिलानी करी ले।
अबकी बेरे हम नैहर रहवौ, जो दिल चाहय से करी ले।''[1]

इनकी संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है कि लोकगीत बहुत प्रणय भावना के साथ-साथ वहाँ के पर्व-उत्सवों, विवाहादि मांगलिक कार्यों को सजग बनाते हैं। निम्न वर्ग की जाति में ननद-भाभी के परिहास लोकप्रसिद्ध है। ननद-भाभी के सम्मुख अपने मन की आकांक्षा भी रख देती है। वह युवा हो गई है, लेकिन अभी तक उसका गौना नहीं हुआ। इसका गीत भी गाड़िवान पक्की सड़क पर गाते हुए चलते हैं।

''सुनरी हमरी जटिनियाँ हो बाबूजी, पातरि बाँस के दौकोनियाँ हो बाबूजी,
गोरी हमर जटिनियाँ हो बाबूजी, चाननी रात के इँजोरिया हो बाबूजी।''[2]

गाँव की महिलाएँ जीवन के हास-विलास को व्यक्त करने वाले लोकगीतों की धुन से अपने आँगन-मैदान सजाती है। रूठी हुई सुंदर और जवान जाटिन पत्नी पति या परिवारवालों से रूठकर नैहर चली जाती है। जाट उसे खोजता हुआ जा रहा है। इस प्रसंग का यह गीत स्थिति के संदर्भ में अतिशय मार्मिक बन पड़ा है। जाट-जट्टिन के खेल में जाट्टिन बनी है। रामपियारिया जाट बनी है। कोयरी टोल की मखनी। मखनी ठीक मर्दों जैसी लगती है। जाट-जट्टिन अभिनय

के साथ-साथ और भी सामयिक अभिनय व्यंग्य नाट्य बीच-बीच में होते हैं। फुलिया डॉक्टर बनी है।

रेणु जी के 'मैला आँचल' के मेरीगंज गाँव में अनेक लोककथाएँ प्रचलित हैं; जैसे-सुरंग सदा ब्रिज की कथा, कुमर बिज्जेभान की कथा, लोरिका की कथा, कमला भैया की कथा, कौआ कैध की कथा आदि। मेरीगंज के तंत्रियाँ टोली में महँगूदास के घर लोग जमा है। वह गाँव के लोगों की झाड़-फूँक करता है। सुरंगा-सदा ब्रिज कथा के प्रसंग में सदाब्रिज पर आसक्त स्त्री का कथन यहाँ द्रष्टव्य है -

''सासू मोरा। मरे हो, मेरे मोरा बहिनी से
मेरे ननद जेठ मोर जी।
मरे हमर सबकुछ पालिबरवा से
फसी गइली परेम के डोर जी।।''[3]

स्पष्ट है कि अन्य आँचलिक उपन्यासों की अपेक्षा रेणु के आँचलिक उपन्यासों को उद्घाटित करने के लिए उक्त लोक उपादानों का अधिक प्रयोग हुआ हैं।

निष्कर्ष : आँचलिक उपन्यासकारों में रेणु जी का स्थान अग्रणी है। 'मैला आँचल' के कारण रेणु जी को महत्व प्राप्त हुआ है। 'अँचल' का अर्थ है-साड़ी का छोर या पल्लू। जिस प्रकार साड़ी का पल्लू कहीं साफ-सुथरा तो कहीं गंदा होता है उसी प्रकार अँचल याने ग्राम जहाँ अच्छाइयाँ भी होती हैं और बुराइयाँ भी हैं। ऐसे ही मेरीगंज गाँव के लोगों में संस्कृति तथा परंपरा का अच्छी तरह से निर्वाह किया हुआ दिखाई देता है। यहाँ होली के त्योहार को ज्यादा महत्व दिया है। इसी दिन लोग इकट्ठा होकर नाचते हैं, गाते हैं। इन लोगों में बिदापत नाच, समदाऊन भजन, बीजक पाठ आदि सांस्कृतिक कार्यक्रम किए जाते हैं। कुछ खेलों से इनकी अंध:विश्वासू वृत्ति का भी परिचय होता है। इस गाँव में अनेक लोककथाएँ प्रचलित हैं। इस प्रकार रेणु जी ने मेरीगंज गाँव के पूरे जीवन पर प्रकाश डाला है।

- **संदर्भ ग्रंथ सूची:**

1. फणीश्वरनाथ रेणु-मैला आँचल, पृ.-91
2. वही, पृ.-15
3. वही, पृ.-57

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

फणीश्वरनाथ 'रेणु' के आँचलिक उपन्यासों में लोकसंस्कृति

डॉ. सरोज पाटिल
श्री शहाजी महाविद्यालय, कोल्हापुर।

प्रस्तावना :

हिंदी उपन्यास साहित्य में सही मायने में आँचलिक प्रवृत्ति विकसित करने वाले श्रेष्ठ आँचलिक उपन्यासकार फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों का सांस्कृतिक पक्ष रेखांकित करना प्रस्तुत आलेख का उद्देश्य रहा है। बिहारी के पूर्णियाँ जिले के औराही हींगना गाँव में जन्मे रेणु का अधिकांश जीवन पूर्णियाँ अँचल में व्यतीत हुआ; जिससे उनके पास संग्रहीत अँचल की अनुभूतियों को उन्होंने विशेष रूप से अपने उपन्यासों के सांस्कृतिक पक्ष के अंतर्गत रेखांकित किया है। रेणु लिखित 'मैला आँचल', 'परती: परिकथा', 'जुलूस', 'पल्टू बाबू रोड' आदि उपन्यासों में चित्रित पूर्णिया अँचल के सांस्कृतिक जीवन का रेखांकन पर्व, त्योहार, रीति-रिवाज, परंपराएँ, उत्सव तथा उनके प्रयोजन, लोकगीत, लोकनृत्य, हास्य-व्यंग्य, लोककथाएँ, किंवदंतियाँ, वेशभूषा, खान-पान, रहन-सहन, लोकभाषा आदि के द्वारा हुआ है।

पर्व-त्योहार: विवेच्य उपन्यासों में चित्रित सिरवा पर्व, बधना पर्व, शामा-चकेवा पर्व, दीपावली, दशहरा आदि त्योहार वहाँ के जन-जन के आमोद-प्रमोद एवं मनोरंजन के साधन बने हुए हैं। साथ में मनोरंजन के लिए आयोजित सुराजी उत्सव, पूजा उत्सव, विदेशियों के विशिष्ट वर्ग के आनंदोत्सव जैसे पूर्णिया डे, सोनपुर डे, बेतियाँ डे, अँचलों के लाल-बाग मेला, सोनपुर मेला, चंपापुर का मेला, मदनपुर का मेला, काली मेला, महिला शिल्प मेला, पशुपति मेला, बदरिया घाट का मेला, सुलतानी परिवारों का मेला, काली मेला आदि का रेणु ने विस्तार से वर्णन किया है।

लोकगीत: खास तौर पर इस प्रदेश में मैथिला भाषा का व्यवहार होने से विवेच्य उपन्यास में मैथिली गीतों का विशेष प्रयोग किया हुआ दिखाई देता है। साथ ही बंगला, पंजाबी, संस्कृत, उर्दू आदि भाषाओं के गीत भी इन उपन्यासों में चित्रित हुए हैं। सामान्य लोगों की भाषा में सहज व्यवहृत होने वाले सूरदास, तुलसी, कबीर, विद्यापति आदि संतों के वचन विशेष रंगत ले आए हैं। रेणु के उपन्यासों में लोकगीतों द्वारा लोक मानस के व्यक्तिगत और सामूहिक सुख-दु:ख की लयात्मक अभिव्यक्ति प्रस्तुत हुई है। इन लोकगीतों में मिट्ठी की सोंधी गंध और ढोलक की थाप एक साथ सुनी और महसूस की जा सकती है।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

लोकनृत्य: नृत्य वह माध्यम है जिसके द्वारा एक साथ संगीत, ताल, नृत्य, अभिनय की अभिव्यक्ति होती है। आँचलिक जीवन में लोग सहजता से लोकनृत्य का आचरण करते हैं। 'मैला आँचल' के मेरीगंज गाँव के जालिमसिंह नाच, बिदापत नाच, ठेठर कंपनी, विदेसिया, बलचाही, संथाली, बिहला आदि नृत्य प्रकार प्रचलित हैं। इनमें बिदापत और सावित्री नाच का अपना महत्व है।

हास्य-व्यंग्य: 'मैला आँचल', 'परती: परिकथा' आदि उपन्यासों के पात्र राम किरपाल सिंघ, बालदेव, मकबूल आदि पात्रों के वार्तालाप से हास्य-व्यंग्य पूर्ण प्रसंगों की निर्मिति हुई है। इससे कथावस्तु में रोचकता बनाए रखने का कार्य हुआ है।

लोककथा: इनमें मेरीगंज की कथा, कमली मैया की कथा, सुरंगा सदाब्रिज की कथा, कोशी मैया की कथा, दुलारी दाय की कथा, रानी डूबी की कथा, ब्रह्मपिशाच की कथा, मिसेज रोजउड की कथा, कोहबर रांडी की कथा, परमदेव की कथा, पंचचक्र की कथा, बकर चरवाह और लकड़ सुंघवा की कथा आदि प्रमुख लोककथाएँ हैं।

वेशभूषा: 'मैला आँचल' उपन्यास के मेरीगंज गाँव में दो ही वर्ग बसते हैं एक-उच्च वर्ग तथा दूसरा निम्न वर्ग। यहाँ के निम्न वर्ग की स्थिति अत्यंत दयनीय है। अधिकांश लोग अर्धनग्न हैं तथा बारह वर्ष तक के बच्चे नंगे ही रहते हैं। वहीं उच्च वर्ग बड़े शान से जीता है। उनकी स्त्रियाँ अच्छे वस्त्र पहनती हैं। वह कंठसर, बांक, हँसुली, बाजू, कंगना, अनंत, चूर, झँझनी जैसे गहनों का इस्तेमाल करती हैं।

खान-पान: हर प्रदेश के खान-पान का संबंध वहाँ के प्रदेश के भौगोलिक वातावरण तथा व्यक्ति की आर्थिक स्थिति पर भी निर्भर रहता है। मेरीगंज गाँव के हर दिन सवा रुपया पर मजदूरी करने वाले श्रमिकों को दो वक्त का पेट भर खाना भी नहीं मिलता। वहाँ के धान, गेहूँ, तिलहन की खेती से प्राप्त अनाज यहाँ के घरों में पकता है। 'पल्टू बाबू रोड' उपन्यास के बंगला परिवार में अक्सर भात तथा मछली खाई जाती है। यहाँ के आदिवासियों का प्रिय भोजन भात, दाल, सब्जी तथा मछली है।

लोकभाषा: हर अँचल विशेषानुसार लोकभाषा का अपना अलग तथा विशिष्ट स्वरूप होता है, जो उस अँचल विशेष की अपनी अलग पहचान बनाता है। इससे अँचल का स्वतंत्र व्यक्तित्व उभरता है। स्थानीय भाषा के शब्द, शब्दों के लोक-प्रचलित रूप, मुहावरे, कहावतें,

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

लोकोक्तियाँ, उपमाएँ, उक्तियाँ, विशिष्ट उच्चारण पद्धति, लय आदि से परिपूर्ण लोकभाषा का अपना अलग ही रंग होता है, जिसमें अँचल विशेष पूरी तरह रंगा होता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि संस्कृति आँचलिकता का विधायक तत्त्व है। संस्कृति मानव द्वारा निर्मित एक अनूठा अविष्कार है; जो मानव जीवन के संपूर्ण क्रिया-कलापों का दर्पण है। इसमें अँचलों की गौरवमयी परंपरा और इतिहास विद्यमान होता है। लोकसंस्कृति द्वारा अँचल की संपूर्ण मानसिकता, जीवन प्रणाली का सहज, सरल, पारदर्शी, स्वाभाविक तथा सुंदर चित्र सामने आता है। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यासों में लोकसंस्कृति का सूक्ष्म, यथार्थ तथा संवेदनशील चित्रण हुआ है। मैथिल अँचल के विशेष प्राकृतिक सौंदर्य और उससे लिपटी हुई संस्कृति से संबंधित वहाँ के रीति-रिवाज, खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, रूढ़ियाँ, धार्मिक मान्यताएँ, लोकगीत, नृत्य, खेल, तमाशें, उत्सव एवं पर्व आदि के सूक्ष्म, समग्र एवं हृदयग्राही अंकन से परिपूर्ण रेणु के उपन्यासों ने आँचलिक उपन्यास साहित्य में अपना विशेष स्थान प्राप्त किया है।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

लोक संस्कृति और आँचलिक उपन्यास

डॉ. आरिफ महात
शिक्षण महर्षि डॉ. बापूजी साळुंखे महाविद्यालय, कराड़।

साहित्य समाज का आईना होता है। साहित्य में समाज के हर कोने का सूक्ष्म चित्रण देखने को मिलता है। हिंदी साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। अत: गाँवों, कबिलों, समूहों, टोलियों आदि रूपों में बसने वाले समाज जीवन एवं उसकी मान्यताओं, धारणाओं, संस्कृति आदि का चित्रण भी किया गया है; जिसे आँचलिक साहित्य के रूप में जाना-पहचाना जाता है। आँचलिक कथा साहित्य अपनी विशेषताओं के कारण अन्य साहित्य से अलग कहलाता है। उसकी अपनी अलग पहचान है। अपनी अलग जमीं है, अपना अलग आसमाँ है। आँचलिक कथा साहित्य के अपने तत्त्व हैं जो इस प्रकार हैं-1) क्षेत्र विशेष कथानक का आधार, 2) क्षेत्र विशेष की भौगोलिक, सामाजिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं का समग्र चित्रण, 3) भाषागत विशेषता और स्थानीय मुहावरे, 4) लोक संस्कृति, 5) युगीन चेतना की अभिव्यक्ति, 6) आँचलिक पात्र। अत: इन तत्त्वों के आधार पर कह सकते हैं कि आँचलिक कथा-साहित्य का नायक कोई एक नहीं होता, बल्कि समग्र क्षेत्र ही आँचलिक कथा-साहित्य का केंद्रबिंदु होता है।

लोककथाएँ : आँचलिक उपन्यासकारों ने अपनी विषय वस्तु में प्रामाणिकता लाने हेतु एवं ग्राम जीवन का सजीव चित्रण करने के लिए अपनी कथा में लोक कथाओं का गुंफण बड़ी कुशलता से किया है। उपन्यासकार के द्वारा कथा में आईं लोक कथाएँ कहीं भी बाधक न बनकर कथा को गतिशीलता प्रदान करती हैं। रेणु जी ने 'मैला आँचल' में 'कमला मैया की कथा', 'सुरंगा सदाब्रिज की कथा', 'कुमार विज्जैमान की कथा' आदि के माध्यम से उपन्यास को रोमांचकारी बनाने का प्रयास किया है।

अंधविश्वास एवं रूढ़ियाँ : आँचलिक लोक संस्कृति का महत्वपूर्ण तत्त्व है अंधविश्वास एवं रूढ़ियाँ। बिना इसके हम आँचलिक जीवन की कल्पना ही नहीं कर सकते। अंधविश्वास का ग्राम जीवन से चोली-दामन का रिश्ता होता है, ऐसा कहना गलत न होगा। अंधविश्वास के चक्र में फँसकर ग्राम जीवन एवं उसमें पलने वाले मनुष्य जीवन की दुर्गति का आँचलिक उपन्यास में यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है। रेणु ने 'मैला आँचल' में गाँववालों के अंधविश्वास की भयावहता को मार्मिकता से चित्रित किया है। गाँव वालों की यह धारणा बनी हुई है कि मार्टिन

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

की कोठी में उसके पत्नी का भूत रहता है। इसलिए गाँव का कोई भी व्यक्ति उसके पास नहीं जाता। जो जाता है वह वापस नहीं आता। ''एक बार ततमा टोली का नंदलाल ईंटे लाने जाता है और जैसे ही वह ईंट छूता है वैसे ही पीछे के जंगल से चुड़ैल निकल आती है और नंदलाल को सांप के कोड़े से पीटना शुरू करती है और वह वहीं ढेर हो जाता है।''[1] गाँव वालों का मानना है कि कमला का ब्याह इसलिए अब तक नहीं हुआ क्योंकि कमला 'कमला मैया' (कमला नदी) की मानी हुई पुत्री है और वह उसे अपने से दूर जाने नहीं देना चाहती। विधवा पार्वती को सभी गाँव वाले डायन मानते हैं। पार्वती की माँ को जादू-टोना करने वाली जानकर ही हीरू उसे लाठियों से पीट-पीट कर मार डालता है। ऐसे अनगिनत किस्से 'मैला आँचल' में भरे पड़े हैं। यहाँ गाँव वालों की अज्ञानता उनके अंधविश्वास का कारण बनी हुई है। यह साफ जाहीर होता है लेकिन गाँववालों के लिए उनका यह अंधविश्वास ही उनका मानसिक आधार बन चुका है। इसका वास्तविक स्वरूप हमें आँचलिक उपन्यास में देखने मिलता है।

लोक गीत एवं नृत्य: आँचलिक उपन्यासों में लोकसंस्कृति के स्वरूप को स्पष्ट कराने में आँचल विशेष के रीति-रिवाज, लोक गीत एवं नृत्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनके ये सभी क्रिया-कलाप सिर्फ मनोरंजन का साधन न रहकर उनके जीवन से जुड़े मधुर-कटू अनुभवों को व्यक्त करते हैं। कुछ-कुछ लोक गीत कथानक को आगे बढ़ाने में कारागर साबित हो जाते हैं। 'अग्निबीज' उपन्यास में 'मार्कंडेय' ने लोक गीतों के माध्यम से मानव जीवन के अछूते संदर्भों को उद्घाटित किया है। शामा के विवाह में बूढ़ी दुलरा दादी द्वारा गाया गीत-

''आटन छोड़ लूँ, मैं पाटन छोड़ लूँ/छोड़ लूँ मयटिया की बोद
एहि सेंधुरा के कारण बाना/छोड़ लूँ मैं देस तिहार।''[2]

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि आँचलिक उपन्यास में प्रयुक्त लोक संस्कृति सिर्फ भारतीय आँचलिक परिवेश में पलनेवालों की परंपराएँ, रीति-रिवाज, मान्यताएँ, उनका अंधविश्वास आदि का ही प्रस्ततीकरण नहीं करते बल्कि इनके माध्यम से वो मनुष्यता का पाठ पढ़ाकर जीवन-सत्य को उद्घाटित करते हैं। साथ ही वो हमारे आस-पास पलने वाले ऐसे समाज जीवन का उद्घाटन करते हैं।

➢ **संदर्भ ग्रंथ सूची:**

1. फणीश्वरनाथ रेणु-मैला आँचल, पृ.-5
2. मार्कंडेय-अग्निबीज, पृ.-215

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

कन्नड़ के आँचलिक उपन्यासों की विशेषताएँ

- डॉ. तारु पवार
आर्टस्, कॉमर्स कॉलेज, धारवाड़।

प्रस्तावना :

हिंदी में जिसे 'आँचलिक उपन्यास' कहा जाता है वही कन्नड़ में 'प्रादेशिक कादंबरी' है। प्रादेशिक कादंबरी या आँचलिक उपन्यास एक विशिष्ट क्षेत्र या स्थान या भौगोलिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवेश से प्रभावित रहकर वहाँ के जन-जीवन, उनके रहन-सहन आदि का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। इसके साथ स्थानीय भाषा या बोली के सार्थक प्रयोगों के साथ एक नवीन शिल्प-संवेदना का विशेष महत्व भी रहता है। हिंदी के डॉ. नगीना जैन के शब्दों में 'आँचलिकता एक विशिष्ट दृष्टिकोण है, जो अँचल या क्षेत्र विशेष की संपूर्ण जीवन प्रणाली की ऐतिहासिक तथा वैज्ञानिक धारणा प्रस्तुत करता है।' हिंदी के आँचलिक उपन्यासकारों में फणीश्वरनाथ 'रेणु', नागार्जुन, डॉ. रांगेय राघव, शिवप्रसाद मिश्र, उदयशंकर भट्ट आदि प्रमुख हैं, उसी तरह शिवराम कारंत, कुवेंदु मिर्जी अण्णारायरू, बसवराज कट्टीमनी, दूनिम बेळगली, अनपमा, निरंजन, देवनुरू महादेव आदि कन्नड़ के प्रसिद्ध प्रादेशिक उपन्यासकार रहे हैं।

कन्नड़ में 'मरळी मण्णिगे', 'निसर्ग', 'रामण्णा मास्तर', 'अशोक चक्र', 'येरडु हेज्जे', 'हदगेट्ट हळळी', 'सिद्धचक्र', 'जनिवार मतु शिवदार', 'पौरुष-परीक्षे', 'स्वातंत्र्यदंडेगे', 'माडीमाडिदवस', 'ग्राम सेवकी', 'कुसुम बाले' आदि प्रमुख एवं प्रसिद्ध प्रादेशिक उपन्यास हैं। अण्णारायरू के उपन्यासों में उत्तर कर्नाटक के गाँवों का लोकानुभव उजागर होता है। इतना ही नहीं, भारतीय संस्कृति एवं परंपरा को एक अंग के रूप में इनके आँचलिक उपन्यासों में दर्शाया गया है। इन उपन्यासों के केंद्र में सामूहिकता को रखा गया है। इसलिए अन्य प्रदेश के पाठकों को भी यहाँ की मानवीयता सर्वसामान्य मूल्य के रूप में दिखाई देती है। इसके साथ ग्रामीण जीवन के सदाचार को उदात्तता की महानता में कैसे पहुँचाया जा सका है? उसे भी पात्रों के द्वारा दिखाया गया है और यही गुण आँचलिक उपन्यासों की महानता को बढ़ावा देता है।

'सिद्धचक्र' मिर्जी अण्णारायरू का प्रसिद्ध आँचलिक उपन्यास है। इसमें स्वतंत्रतापूर्व और स्वातंत्र्योत्तर युग के ग्राम जीवन के बदलते परिवेश को दर्शाया है। 'अत्याचार के माहौल में' हम समाज का निर्माण कर रहे हैं। यहाँ इसी विवाद को दर्शाया गया है। परिवर्तन के नाम पर हमारे गाँव की परंपरागत जीवन संस्कृति, मानवीय मूल्य हीन होते जा रहे हैं। जीवन में मानवीयता का

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

स्थान पैसा ले रहा है; इसी परिवर्तित जीवन का संकेत लेखक ने दिया है। उपन्यासकार ने प्रस्तुत उपन्यास में वर्तमान जीवन चक्र को स्पष्ट किया है। 'फिरता हुआ चक्र में' ऊपर का काटा नीचे और नीचे का काटा ऊपर जैसे गरीब-अमीर और अमीर-गरीब होते जा रहे हैं। इस काल चक्र को कोई रोकता नहीं है। यह बराबरी की आवाज रोटी के टुकड़े और थोड़ी भाजी मात्र को खाना जानने वाली पदव्वा और गौड़ा, कुलकर्णी, सेट्टरू आदि इस परिवर्तित समाज में न परिवर्तित होने वाले व्यक्ति हैं। शिरगुप गाँव के सिद्ध का 'गौडाओं की तरह पगड़ी पहननेवाला सर हा पर भी गाँधी टोपी डालनेवालों से आगे है। इसीलिए आज राजनीतिक के वेश में बदलाव होने पर भी स्वार्थ, अज्ञान, मतलबीपन में मात्र कोई बदलाव नहीं हुआ है। यही अर्थ इस आँचलिक उपन्यास की गर्भ चेतना है।

'अशोक चक्र' अण्णारायरू का आँचलिक उपन्यास है; जो एक किसान परिवार के उतार-चड़ाव, असहायता, शोषण आदि को दर्शाता है। इसमें बाबण्णा और पद्मावती दोनों पति-पत्नी ग्रामीण परिवार के प्रतिनिधित्व का प्रतीक है। अपने कठिन परिस्थितियों में जीवन चलाना कितना कष्टदायक होता है, इसका यथार्थ चित्रण इसमें किया गया है। पुरुष की असहायता, स्त्री का कठोर परिश्रम इस उपन्यास का केंद्रबिंदु है। स्त्री को यहाँ यथार्थ रूप में और आदर के साथ चित्रण करना मिर्जी अण्णारायरू की विशेषता रही है।

रामण्णा मास्तरू (रामण्णा शिक्षक): यह गाँव की पाठशाला के एक शिक्षक को केंद्र में रखकर लिखा गया आँचलिक उपन्यास है। चिक्कूर के एक प्राथमिक स्कूल शिक्षक का जीवन-दर्शन ही इस उपन्यास की प्रमुख कथावस्तु है। इसमें अपने आदर्श का पालन करते हुए जीवन व्यतीत करने वालों के प्रति हमारा समाज कैसा है? इस प्रश्न को उठाया गया है। निजी अण्णारायरू स्वयं एक शिक्षक थे। वे अपने जीवन में अनेक बाकई कठिनाइयों को झेले हैं। इसके लिए स्वयं अण्णारायरू कहते हैं कि ''राण्णा मास्तर में वह एक मनुष्य का निर्माण हो चुका है। इस उपन्यास में मेरे झेले हुए जीवन की घटनाओं में से एक को चित्रित किया गया है। इस उपन्यास में उनके जीवन से जुड़े अनुभव एवं ईमानदारी आकर्षित करती है।

'निसर्ग' को कन्नड़ आँचलिक उपन्यासों में एक उच्चकोटि की कृति मानी जाती है। इसमें जीवन को समग्र दृष्टि से देखने का विस्तार ही नहीं बल्कि आँचलिक सौंदर्य को आत्मसात किया हुआ अद्भुत उपन्यास है। इसकी भाषा, उस प्रदेश की बोलचाल की बोली, जन-समुदाय की आत्मा, प्रकृति सौंदर्य की सरलता ने इस उपन्यास को श्रेष्ठ बना दिया है। 'देशी भाषा को

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

उपन्यास शैली में उतारकर संवादों में सरसता, शक्ति अणारायस जैसे जीवन के आलोचक के लिए मात्र संभव है।' यह एक तरफ डॉ. हीरेमल्लूर ईश्वरन ने व्यक्त किया है, तो दूसरी तरफ निरंजन ने 'अण्णारायरू की शैली, भाषा प्रयोग तथा देशी पदों को कन्नड़ की जायदाद' माना है।

निष्कर्षत: कन्नड़ के आँचलिक उपन्यास साहित्य का क्षेत्र बहुत ही विशाल है। इसलिए इसे करावळी प्रदेश (कोंकण प्रदेश), मलेनाडु (तलहट प्रांत) और बयलुसी में (मैदानी प्रदेश ऐसे तीन भागों में विभाजित किया गया है। इनमें ग्रामीण-प्रदेश ग्रंथ, मासुम समाज और दुष्ट राजनीति का दर्शन करवाया गया है। इसके साथ अँचल की भाषा और उसकी बोलचाल की बोली, शब्द आदि के द्वारा ग्राम्य जीवन की पद्धति-परंपरा, संस्कृति, रीति-रिवाज, रहन-सहन, खान-पान, ओढ़वा-पहनावा, शादी-ब्याह, पर्व-त्योहार आदि अनेक सदर्भों का वर्णन कर इस आँचलिकता की विशेषताओं को संसार के सामने दर्शाने का प्रयास भी किया गया है।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

मैत्रेयी पुष्पा के आँचलिक उपन्यास
('इदन्नमम्' के पुरुष पात्रों के संदर्भ में)

डॉ. मीनाक्षी कुरणे
कृष्णा महाविद्यालय, रेठरे-बुद्रूक।

प्रस्तावना:

आँचलिक उपन्यास के विभिन्न पहलुओं में महत्वपूर्ण पहलू शिल्प भी है क्योंकि साहित्य में प्रत्येक रचना की अपनी एक विशिष्ट प्रक्रिया होती है, जिसके आधार पर उसे स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त होता है। इसी रचनात्मक प्रक्रिया के आधार पर लेखक किसी रचना को उसके भेद-उपभेद में विभाजित करता है। यदि हम किसी उपन्यास को ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक या सामाजिक कहते हैं तब उसका आधार हमारे पास उसकी रचनात्मक बुनावट अर्थात् शिल्प ही होता है ।

'इदन्नमम' (1994) उपन्यास में लेखिका ने बुंदेलखंडी जीवन के प्रामाणिक और अंतरंग अनुभव तथा खदान में काम करने वाले मजदूरों की त्रासद गाथा अंकित की है। उपरोक्त उपन्यास में लेखिका का लक्ष्य अँचल का मानवीकरण करने पर ही केंद्रित है। इसमें चित्रित कोई भी पात्र नायकत्व ग्रहण नहीं कर पाता क्योंकि ये सभी पात्र अपने व्यक्तित्व से अँचल को ही समर्पित हुए हैं। इस संदर्भ में डॉ. रामदरश मिश्र का यह कथन ठीक ही है कि ''अँचल की विविधता को रूप देने के लिए लेखक कभी इस कोण पर खड़ा होता है, कभी उस कोण पर, कभी ऊँचाई पर तो कभी गहराई में। इसमें अनेक पात्रों की आवश्यकता रहती है। हर पात्र की सत्ता निजी महत्व की है। इनसे कोई पात्र एक-दूसरे के निमित्त नहीं होता, सब आँचल के निमित्त होते हैं।''[1]

विक्रमसिंह शक्की स्वभाव का है। इसी स्वभाव के कारण वह अपने पिता पर बार-बार शक करता रहता है कि कहीं वह उनके परोपकारी स्वभाव के कारण जायदाद बाँट न दें तथा पत्नी की बातों में आकर पिता द्वारा दिया मंदा की शादी का वचन तोड़कर पिता को अपमानित करता है। इतना ही नहीं, वह निस्संकोच कर अपने पिता के 'दिल के लाल' बने पोते को छीन लेता है तथा कंस की तरह अपने पिता को घर पर ही कैद में रखता है; ताकि परोपकारी पिताजी अपनी संपत्ति कहीं बाँट न सकें। धन के लालच में अपने पिता को मौत से भी बदतर जिंदगी जीने को मजबूर कर देता है। उपन्यास का दूसरा महत्वपूर्ण पुरुष पात्र है-पंचमसिंह। उसके चरित्र की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

भाई के रूप में-(दिल के सच्चे, कर्तव्यनिष्ठ, भाई पर विश्वास रखनेवाला)

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

पति के रूप में-(पत्नी पर भरोसा रखनेवाला, संवेदनशील, परोपकारी, स्वाभिमानी)

होनहार, कर्तव्यनिष्ठ, दयालु, परोपकारी तथा सच्चे दिल का पंचमसिंह निराकार मन से अपने भाई पर प्रेम करता है। इसी स्वभाव के कारण सभी उन्हें मान-सम्मान देते हैं। थाना, तहसील, जिला, शहर के सभी कामों में ये माहिर है, परंतु उनके छोटे भाई गोविंदसिंह बिल्कुल उनके विपरीत स्वभाव के हैं। पंचमसिंह को अपने छोटे भाई पर दृढ़ विश्वास है। इसलिए वे बिना हिचकिचाते घर के खजाने की चाबी उन्हें देते हैं।

यशपाल का विवाह अपनी दादा की पसंद से गरीब घर की लड़की कुसुम से हुआ था। कुसुम स्वभाव से सुंदर और सर्वगुणसंपन्न है, मगर धन का लालची पति यशपाल उसकी हमेशा अवहेलना ही करता है। इतना ही नहीं, वह अपने पत्नी के साथ नीरस, निर्मोही, बेरूखासा व्यवहार करता है। वह उसकी तरफ आँख उठाकर भी कभी नहीं देखता। उसे पत्नी का अधिकार देने की बात तो कोसों दूर है। रतन यादव प्रेमा का जीजा है। उनका व्यक्तित्व आकर्षक है। इसी गुण के कारण वह अपनी विधवा साली के साथ भागकर झूठी शादी करता है। प्रेमा को धोखे में रखकर तथा उसे बहला-फुसलाकर प्रेम की झूठी बुनावट में उसे जखड़ता है। स्वभाव से आवारा गुंडा होने के कारण उसका कोई कुछ बिगाड़ नहीं सकता।

लेखक ने जगेसर का व्यक्तित्व व्यसनी, शराबी, आलसी, पत्नी के ऊपर बोझ बनकर जीने वाले पति के रूप में उभरा है। व्यसनी एवं जुआरी जगेसर कुछ काम-धाम नहीं करता। मुफ्त का खाना खाकर शराब के ठेके पर अभिलाख जैसे आवारा ठेकेदार के साथ नित्य पड़ा रहता है। उसकी पत्नी उसके इस व्यवहार से तंग आती है। पत्नी के रहते ही बेटी समान उम्र की लड़की को रखैल बनाकर रखता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा ने 'इदन्नमम्' उपन्यास में पुरुष पात्रों का पारिवारिक चित्रण किया है। विशेषत: पति के रूप में प्रस्तुत हुए ये पात्र पति-पत्नी के रिश्ते में पूरी ईमानदारी निभाने वाले हैं तो कोई पत्नी का अधिकार नकारने वाले स्वार्थी, अन्यायी, अविश्वासी, घिनौने वृत्ति के तथा जोरू का गुलाम के रूप में चित्रित हुए हैं। अन्य रिश्तों में लालची पिता तथा शक्की पुत्र के रूप में पुरुष पात्रों का अंकन हुआ है। अत: लेखिका ने बुंदेलखंडी आँचलिकता को ध्यान में रखते हुए इन पुरुष पात्रों का चित्रण किया है।

- **संदर्भ ग्रंथ सूची:**

1. मैत्रेयी पुष्पा-इदन्नमम्-मुखपृष्ठ से उद्धृत।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

आँचलिक उपन्यास का महत्व

डॉ. हणमंत सोहनी

सदाशिवराव मंडलिक महाविद्यालय, मुरगुड।

वर्तमान जीवन में उपन्यास विधा का सबसे अधिक बोलबाला है। उपन्यास विधा ने मानव जीवन को गतिमान बनाया है। इस गति ने मानव जीवन के भिन्न-भिन्न आयामों को रेखांकित किया है। उपन्यास में मानव जीवन के बहुआयामी पहलुओं को समेटने का बड़ा प्रयास हो रहा है। वर्तमान युग में उपन्यास विधा ने अपना स्थान सबसे ऊपर पाया है। अत: हिंदी साहित्य में यह विधा 'मील के पत्थर' जैसी मौजूद है।

उपन्यास विधा के अंतर्गत आँचलिक उपन्यास ने अपना अलग स्थान प्रस्थापित किया है। 'आँचलिक' का अर्थ क्षेत्रीय या विभाग विशेष। आँचलिक उपन्यास के उद्‌भव में प्रेमचंद, वृंदावनलाल वर्मा, निराला, नागार्जुन से लेकर मैत्रेयी पुष्पा, मिथिलेश्वर आदि वर्तमान साहित्यकारों के उपन्यासों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। फणीश्वरनाथ रेणु पूर्व या स्वतंत्रता पूर्व युग आँचलिक उपन्यास का प्रथम उत्थान काल माना जाता है। आँचलिक उपन्यास के नामकरण, उद्‌भव एवं विकास का श्रेय फणीश्वरनाथ रेणु और उनके 'मैला आँचल' उपन्यास को दिया जाता है। आँचलिक उपन्यास प्रकृति के प्रति रूझान, उपेक्षित एवं पिछड़े जीवन का उद्‌घाटन करते हैं। मोहभंग, लोकसंस्कृति का अन्वेषण, लोकभाषा का उत्थान, राजनीतिक चेतना, व्यक्ति चेतना, सामूहिक जीवन का प्रतिपादन एवं आधुनिकता का विरोध आदि विभिन्न कारण आँचलिक उपन्यास के पीछे विद्‌यमान हैं। आँचलिक उपन्यास के रूप में फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' उपन्यास (1952), नागार्जुन का 'बलचनमा' और शिवपूजन सहाय का 'देहाती दुनिया' (1929) आदि का प्रकाशन हुआ है। अत: सन् 1952 ई. यह वर्ष हिंदी आँचलिक उपन्यास के उद्‌भव की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

'मैला आँचल' के पश्चात् आँचलिक उपन्यासों की लंबी श्रृंखला प्राप्त हो जाती है। देवेंद्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिए', नागार्जुन का 'बाबा बटेसरनाथ', उदयशंकर भट्‌ट का 'सागर लहरें और मनुष्य', रेणु का 'परती परिकथा', अमृतलाल नागर का 'बुंद और समुद्र', रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ', राजेंद्र अवस्थी कृत 'सूरज किरण की छाँव' और 'जंगल के फूल', राही मासूम रजा का 'आधा गाँव', शिवप्रसाद सिंह का 'अलग-अलग वैतरणी', जगदीश चंद्र का

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

'धरती धन अपना' और हिमांशु जोशी का 'अरण्या' आदि कृतियों में आँचलिकता का दर्शन हो जाता है। आधुनिक काल में तो आँचलिक उपन्यासों की बाढ़-सी आई हैं। डॉ. रामदेव शुक्ल के 'विकल्प' उपन्यास में आँचलिकता का दर्शन पाया जाता है। इस उपन्यास में गाँव के लोगों की बदलती मानसिकता का दर्शन होता है। उनके भावों का समग्र मूल्यांकन प्रस्तुत उपन्यास में पाया जाता है। लेखक ने इस उपन्यास में उत्तर प्रदेश के राजापुर, डोमपुरवा के पूर्वी आँचल के माध्यम से गाँव की सच्चाई, राजनीति, सत्ता परिवर्तन, संघर्ष और इन सभी के साथ जुड़ी हुई समस्याओं का मूल्यांकन प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित हुआ है। गाँव के प्रधान और पंचायत से लेकर विधायक तक की युगीन राजनीति में हुए सत्ता परिवर्तन और संघर्ष को इस उपन्यास में अंकित किया गया है। डॉ. रामदेव शुक्ल जी ने अपने उपन्यास में छोटी-छोटी घटनाओं का अंकन किया है। पंकज आई. एस. एस् अफसर है। वह अपने कर्तव्य के प्रति हमेशा सतर्क रहता है। प्रो. कृष्णदेव जैसे ही उनके विचार हैं वैसे वे भी गाँवों की उन्नति के लिए कार्य करते हैं। गाँवों की राजनीति, संघर्ष के कारण वह विवश हो जाता है। अत: वह अपने कार्य से दूर रहता है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने कई पात्रों के माध्यम से आँचलिकता का दर्शन कराया है। चौबे भाई, गरजु सुकुल और सुभग सुकुल की कथा को भी चित्रित किया है। प्रस्तुत कथा चमारों के जीवन में आने वाले कई प्रसंगों की मिसाल है। इस उपन्यास में सभी वर्गों के पात्रों को समाया है।

गाँव की व्यवस्था से तंग आकर प्रो. कृष्णदेव अपने पिता को शहर ले जाना चाहता है। तब बाबा कहते हैं-'मुझे जब तक जिंदा रहना है, गाँव में ही रहना है। ...गाँव छोड़ देना आसान है। फिर से गाँव में घुस पाना बहुत मुश्किल है। स्पष्ट है कि बाबा किसी भी स्थिति में गाँव से छोड़ना नहीं चाहते। लेखक ने गाँव के पारिवारिक जीवन में समय के साथ हो रहे परिवर्तन, संघर्ष और विघटन आदि का चित्रण किया है। 'विकल्प' उपन्यास में राजनीति कूट-कूट कर भरी हुई है। चुनाव में फर्जी वोट डाले जाते हैं। प्रो. कृष्णदेव को वोट का अधिकार भी नहीं दिया जाता। आँचलिक उपन्यास का स्वरूप एवं विवेचन तब तक अधूरा रहेगा जब तक ग्रामीण और शहरी जीवन का प्रश्न हल नहीं किया जा सकता। समस्त आँचलिक आंदोलन के पीछे कहीं-न-कहीं ग्राम और ग्रामीण कथांचल या ग्रामीण संस्कृति रही है। अत: यह कहना उचित होगा कि साहित्य के इतिहास में आँचलिकता का अहम स्थान है और उसकी भी एक समृद्ध परंपरा पाई जाती है। आँचलिकता का अर्थ है आँचल की समग्रता को ग्रहण करके एक नवीन अर्थों में उसे व्यंजित करने का सफल प्रयास करना यही आँचलिक उपन्यासों का लक्ष होता है।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

नागार्जुन के उपन्यास 'बाबा बटेसर नाथ' का आँचलिक शिल्प

डॉ. दिलीप भोसले

आर्टस् एंड कॉमर्स कॉलेज, कडेपुर।

आँचलिकता का स्वरूप:

'अँचल' शब्द की व्युत्पत्ति पाणिनीय व्याकरण के अनुसार 'उच्च' धातु में 'अचल' प्रत्यय के प्रयोग से हुई है। अँचल शब्द में ही प्रत्यय लगाकर आँचलिक शब्द बना है। अँचल तथा आँचलिकता शब्द की कुछ प्राचीन व्याख्या साहित्य दर्पण में मिलती है। 'वस्त्र प्रांत भाग: आँचल इति भाषा' उरू: कुरंग, कददश श्चंचले चैना श्चलोभति' अर्थात् वस्त्रो पल्लो प्रांत भाग अर्थात् वस्त्र का छोर, साड़ी, ओढ़नी आदि का वह छोर जो छाती और पेट पर रहता है। आँचल यानी छोर, देश का प्रांत, कोना, तट, किनारा आदि।

सर्वहारा वर्ग की समस्या को उजागर करने वाली कृति-बाबा बटेसरनाथ: उपन्यासकार नागार्जुन प्रगतिशील आँचलिक उपन्यासकार है। आँचलिकता और प्रगतिशीलता को साथ-साथ ग्रहण करने के कारण उनकी एक अलग पहचान बनी हुई है। उन्होंने देहाती जीवन का चित्रण तथा मूल्यांकन करने के लिए मिथिला के अँचल विशेष से संबद्ध उपन्यास लिखे हैं। 'रतिनाथ की चाची', 'बलचनमा' तथा 'बाबा बटेसरनाथ' का आधार मिथिला का अँचल है। इस भूमि और उसके जनजीवन का, उसकी विकृतियों का तथा परिवेश का चित्रण उन्होंने समाजवादी दृष्टि से किया है। नागार्जुन विशुद्ध मैथिल है। अत: वहाँ के नर-नारी, बाल-वृद्ध, पशु-पक्षी, तालाब, पेड़-पौधे तथा आचार-विचार से गहरी आत्मीयता महसूस करते हैं ।

'बाब बटेसरनाथ' उपन्यास सन् 1954 ई. में लिखा गया है। 'जैकिसुन यादव' के गाँव के बाहर सौ वर्ष से अधिक एक पुराना बरगद का पेड़ है। यह वृक्ष जैकिसुन के परदादा ने लगाया था। एक के बाद एक पीढ़ी नष्ट होती गई पर काल को धत्ता बताने वाला, अमरवृक्ष की तरह साक्षी रहनेवाला यह वटवृक्ष ज्यों का त्यों खड़ा रहा। रूपउलो गाँव के लोग इसे श्रद्धा एवं प्रेम से बाबा बटेसरनाथ कहते हैं। एक दिन वह मनुष्य की भाषा में जैकिसुन (जैकिसन) को बताता है कि किस प्रकार उसे पच्चीस रुपये में बेचने का निर्णय लिया गया और वह लोकोपकार के लिए मरने को तैयार है। ''जीने के लिए जीना, जीना नहीं है, परोपकार के लिए जीना ही जीना है। अगर मेरी मृत्यु जन-साधारण के लिए लाभप्रद न हो तो नहीं चाहिए मुझको यह जीवन, परंतु दो एक स्वार्थी, धूर्त व्यक्तिगत हानि-लाभ की दृष्टि से मुझे देखते हैं, मैं कदापि नहीं चाहूँगा कि

उसका मनोरथ पूर्ण हो... नहीं बेटा, बिल्कुल नहीं। अक्षय वट भी धरती पर ही हुआ करता है। जब तक लोग मुझे चाहेंगे, तब तक मैं अक्षयवट हूँ ।''1. गाँव के जमींदार जैनारायण झा तथा टुनाई पाठक राजबहादुर से बरगदवाली जमीन और पुरानी पोखरवाली जगह अपने कब्जे में कर लेता है। गाँव वालों को जब इस बात का पता लगता है तो वे क्रोधित होकर घृणा से सुलग उठते हैं। गाँव के दो-तीन नौजवान थाना, अदालत, कचहरी से लेकर काँग्रेस कमेटी, असेम्बली, पार्लियामेंट के प्रभुओं तक दौड़-धूप करके बेबस लौट आते हैं। गाँव में यह अफवाह फैलती है कि पाठक और जैनारायण बरगद को कटवाना चाहते हैं। बरगद को बचाने की चिंता में जैकिसुन और उसके दो साथी उसकी छाह में गहरी नींद सो जाते हैं। तभी एक महापुरुष जैकिसुन के कपाट और सीने पर हाथ फेरकर उसे बताते हैं कि वे बरगद के अवतार हैं। फिर वे अपने जीवन की कथा के साथ-साथ उस गाँव की पूरी कथा का वर्णन करते हैं। प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित ''जैकिसुन की व्याकुलता, उसके स्वप्न तथा बाबा का प्रकट होना, जैकिसुन और जीवन द्वारा मोर्चा निकालना, अन्याय का विरोध करना, जिला कमेटी के अध्यक्ष बाबू श्यामसुंदर वकील के द्वारा सहायता करना आदि सामाजिक चेतना के प्रतीक हैं। इसमें उस क्रांति के लिए किसान को तैयार किया गया है; जिससे पूँजीवाद नष्ट होगा।''2 इस क्रांति के पीछे नागार्जुन का दृष्टिकोण साम्यवाद की स्थापना करना रहा है। वटवृक्ष का मनुष्य की भाषा में बोलना नागार्जुन की एक कल्पना मात्र है जो रूपशिल्प की दृष्टि से नया प्रयोग माना जा सकता है।

सारांश में नागार्जुन का उपन्यास 'बाबा बटेसरनाथ' एक वटवृक्ष के रूप में अंधविश्वासों में गाँववालों के लिए 'देवता' बनकर प्रस्तुत होता है। यह वटवृक्ष निर्जीव वटवृक्ष न होकर मानवीय भावों एवं विकारों से मुक्त संवेदनयुक्त सजीव पात्र है। प्रस्तुत उपन्यास में राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याओं के साथ प्राकृतिक विपत्तियों का भी उल्लेख मिलता है।

➢ संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. फणीश्वरनाथ रेणु-बाबा बटेसरनाथ, पृ.-12-13

2. डॉ. नगीना जैन-आँचलिकता और हिंदी उपन्यास, पृ.-142

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में लोकसंस्कृति

(उपन्यासकार नागार्जुन के संदर्भ में)

डॉ. उत्तम आळतेकर
एस. के. कॉलेज, देऊर

प्रस्तावना :

हिंदी उपन्यास साहित्य में आँचलिक उपन्यास साहित्य का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। आँचलिक उपन्यासों की परंपरा प्रेमचंद से लेकर निर्मल वर्मा, फणीश्वरनाथ रेणु तथा नागार्जुन तक विकसित होती दिखाई देती है। प्रेमचंद के पश्चात् आँचलिक उपन्यास साहित्य और उन्मुख होता जा रहा है। इस परंपरा के एक प्रमुख उपन्यासकार के रूप में हम नागार्जुन की ओर देख सकते हैं। आँचिलक समाज की तात्कालीन समस्याओं को यथार्थवादी ढंग से अपने उपन्यासों में उठाने का काम नागार्जुन ने किया है।

रीति-रिवाजों और परंपराएँ: नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में मिथिला अँचल के रीति-रिवाज और परंपरागत प्रथाओं को बड़ी आस्था के साथ प्रस्तुत किया है। इसमें प्रमुख रूप से 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में चित्रित बिकौआ प्रथा का चित्रण किया है। प्रस्तुत प्रथा के अंतर्गत कुलीन ब्राह्मण अपने उम्र के बाईस वर्ष तक विवाह करता है और उसका सारा जीवन ससुराल में बितता है। विवाह के अवसर पर वधू की माँग भरना, गाँठ बाँधना तथा अग्नि के फेरों की रीतियाँ 'दुखमोचन' उपन्यास में दिखाई देती है। जैसे 'विवाह की बाकी विधियाँ सकुशल संपन्न हुई माँग में सिंदूर भी पड़ा गाँठी भी बाँधी, फेरे भी लेंगे....।''[1] इसके साथ विवाह के समय पर नाई द्वारा हवन की लड़कियाँ लाना तथा कुम्हार द्वारा मंगल कलश लाने की प्रथा है। ''वह देखो, नाई हवन की लड़कियाँ ला रहा है, कुम्हार हाथी पातिल पुरहड और सकोरे वगैरह ले आया है ।''[2] विवाह के बाद 'गौने' का रिवाज 'बलचनमा' उपन्यास में चित्रित हुआ है। गौने के पूर्व किसी व्यक्ति के हाथों ससुराल सगुण के रूप में कुद सामान भेजा जाता है। ''डोरा सिंदुर और सगुन का सामान लेकर चुन्नी मेरे ससुराल गया और गौन के लिए उन लोगों को राजी कर आया। यह एक किस्म की रस्म अदाई थी।''[3] प्रस्तुत उपन्यास में बिहार में स्त्री-पुरुष एक साथ इकट्ठा नहीं होते। साथ ही मनोरंजन कार्यक्रम में नहीं जाते। इस बारे में प्रस्तुत उपन्यास का मस्तराम कहता है- ''मेले ढेले में नहान में हाटबाजार में स्त्री-पुरुष अलग-अलग दिखाई पड़ते हैं, इधर।''[4]

अंधविश्वास-परंपरागत मान्यताएँ और विश्वास: उपन्यासकार नागार्जुन के उपन्यासों में अँचल का चित्रण होने के कारण अँचल में स्थित रूढ़िवादी धार्मिक मान्यताओं और अंधविश्वास की जड़ बहुत गहरी है। साथ ही परंपरागत मान्यता और उन पर विश्वास गहरा दिखाई देता है। ''लेकिन पाठक बाबा ध्वजा जब से यहाँ खड़ी हुई तब से मेरे प्रति सभी की भावना बदल गई।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

श्रद्धा, भक्ति, भय और आतंक... अब में प्रिय नहीं था, पूजनीय था-वंदनीय और माननीय था।''[5] बाबा बटेसरनाथ के इस मंतव्य से समाज में प्रचलित अंधभक्ति से वृक्षा पूजा कराके अंधविश्वास में अपनी अनास्था व्यक्त की है। 'उग्रतारा' उपन्यास में गाँवों में ग्रहों की शांति के लिए आयोजित 'नवाह पाठ' नवरात्र में दसों दिन 'चंडी का पारायण' का अंकन किया गया है।

त्यौहार-उत्सव पर्व: 'रतिनाथ की चाची' उपन्यास में भाईदूज का त्यौहार विशेष रूप से मनाया जाता है। कार्तिक शुक्ल दूवितीय उन लोगों के लिए महत्वपूर्ण है जिसकी बहन जीवित है। इसका चित्रण करते हुए नागार्जुन लिखते हैं-''भाई दूज का यह त्यौहार उमानाथ के लिए बचपन से ही आनंद और उत्सव का दिन रहा है। ब्याहकर दूर चली जाने पर भी प्रतिभामा प्रतिवर्ष अपने अपने भाई को इस त्यौहार के अवसर पर बुलवाती है।''[6] 'वरूण के बेटे' उपन्यास में छठी का उत्सव भी धूमधाम से मनाया जाता है। छठी के उत्सव का चित्रण करते हुए नागार्जुन लिखते हैं, ''मुगला के घर लड़का पैदा हुआ। छठी धूमधाम से हुई। भोज भात नाच गाना, रैंशी-खुशी...।''[7]

लोकगीत: नागार्जुन 'वरूण के बेटे' उपन्यास में लोकगीतों के माध्यम से माधुरी के तड़पते यौवन को प्रस्तुत करते हैं-''जीना हुआ मुश्किल, जवानी हुई घातक। न डालो, न डालो ओ मेरे दिल के चाँद। स्नेह और प्रीति का जाल। आओ, आओ देख जाओ हाल।''[8] नागार्जुन ने 'बलचनमा' उपन्यास में चिखती कोयल का वर्णन किया है-''सखि है मजरल आमक बाग, कहु कहु चिकर ए कोइलिया, झींगुर गावें फाग''[9] स्पष्ट है कि आम और बौर से लड़े वृक्ष झींगुर का यह संगीत हमें शहरों से दूर किसी अमराई में लेकर जाता है। नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में लोकमानस में चित्रित संस्कृति, परंपरा एवं विरासत को अक्षुण्ण बनाए रखने का ऐतिहासिक कार्य किया है। इसके साथ ही नागार्जुन लोकगीतों के माध्यम से लोकमानस की सहज, पवित्र, सरल, स्वाभाविक एवं सामूहिक अभिव्यक्ति कराने का महत्वपूर्ण काम किया हुआ दिखाई देता है।

➢ संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. नागार्जुन-दुखमोचन, पृ.-48
2. नागार्जुन-नई पौध, पृ.-34
3. नागार्जुन-बलचनमा, पृ.-131
4. नागार्जुन-जमनिया का बाबा, पृ.-52
5. नागार्जुन-बाबा बटेसरनाथ, पृ.-68
6. नागार्जुन-रतिनाथ की चाची, पृ.-70
7. नागार्जुन-वरूण के बेटे, पृ.-110
8. वही, पृ.-21
9. नागार्जुन-बलचनमा, पृ.-147

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

हिंदी के आँचलिक उपन्यासों की विशेषताएँ

-डॉ. मारुती यमुलवाड
बलभीम कॉलेज, बीड।

प्रस्तावना :

आँचलिकता की प्रवृत्ति ने विश्व साहित्य को प्रभावित किया है। हिंदी साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा है। देश की प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक विविधता के तहत भारतीय साहित्य में उसका स्वागत एवं प्रसार विविधोन्मुखी रूप में हुआ है। औपन्यासिक विधा से इसका अत्याधिक तादात्म्य स्थापित हुआ है। इस प्रवृत्ति ने उपन्यास विधा को माटी की गंध से जोड़ने का प्रामाणिक और महत्वपूर्ण प्रयास किया है। हिंदी उपन्यासों में आँचलिकता का स्त्रोत बंगला उपन्यासों से फूट पड़ा है। हिंदी में प्रेमचंद और वृंदावनलाल वर्मा के उपन्यासों में आँचलिकता के तत्व अवश्य परिलक्षित हुए हैं, लेकिन उनका प्रस्फुटन स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में भी दृष्टिगोचर होता है। आँचलिक साहित्य एक वैशिष्ट्यपूर्ण, अपरिचित अँचल के जन-जीवन की व्यथा-कथा तथा संस्कृति का परिचायक है। इसमें आम-आदमी की त्रासदी का यथार्थ स्वरूप दर्शनीय है। सही अर्थ में फणीश्वरनाथ रेणु के मैला आँचल में आँचलिकता की प्रारंभिक प्रवृत्ति परिलक्षित हुई है।

आँचलिक उपन्यासों की विशेषताएँ:

1) आँचलिक उपन्यासों में कथानक गौण रूप धारण कर लेता है। यह अनेक प्रासंगिक कथाओं के बीच बिखेरता रहता है। इसमें समग्र वातावरण प्रमुख भूमिका अदा करता है। अँचल के यथार्थ का विस्तृत एवं सजीव अंकन इस धारा के उपन्यासों की निजी विशेषता है।
2) आँचलिक उपन्यासों में समुदाय विशेष का चित्रण भी महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। इसलिए इन उपन्यासों में नायक-नायिका का एकदम अभाव है। अत: यहाँ अँचल नायक का स्थान ग्रहण कर लेता है।
3) आँचलिक उपन्यासों में प्रगाढ़-स्थानीय रंग या प्रदेश विशेष भी महत्वपूर्ण है। इसमें अँचल के लोगों के रहन-सहन, खान-पान, लोकवाणी तथा उत्सव-पर्व-त्यौहार आदि की स्पष्ट छवि दिखाई देती है।
4) आँचलिक उपन्यासों में लेखक की समाजशास्त्रीय एवं सौंदर्यवादी दृष्टिकोण का समुचित समावेश दृष्टिगोचर होता है। उस विशेष भू-भाग के जन-जीवन, रीति-रिवाज, वेश-भूषा

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

आदि के वर्णन से उपन्यासकार व्यक्तिगत रूप में उस समाज से होनेवाले अपने संबंध का परिचय देता है।

5) प्रत्येक अँचल का अपना स्वतंत्र अस्तित्व एवं संस्कृति होती है। आँचलिक उपन्यास समाजशास्त्रीय आकलन अवलोकन से पूर्ण है। हिंदी के आँचलिक उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक उथल-पुथल का दस्तावेज है।
6) यथार्थवादी शैली आँचलिक उपन्यास की मेरूदंड है। अँचल का फोटोग्राफिक चित्रण करना उसकी एक नई पद्धति है। फोटोग्राफर किसी दृश्य की तस्वीर खींचने के समान एक आँचलिक उपन्यासकार किसी दृश्य या घटना का शब्द चित्र अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करता है। मानवीय व्यवहारों का यथार्थ एवं सूक्ष्म अंकन इस शैली में स्पष्ट परिलक्षित होता है।
7) आँचलिक उपन्यास एक विशिष्ट दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है और वह अपने उद्देश्य में भी विशिष्ट होता है। उसका प्रमुख उद्देश्य आँचलिकता का प्रस्तुतीकरण होता है, उपन्यास का सबकुछ अँचल के प्रति समर्पित होता है।
8) आँचलिक उपन्यासों में कथोपकथन आँचलिक भाषा में ही रखे जाते हैं। इससे सजीवता, विस्मय तथा असाधारणता की भावना उत्पन्न होती है।
9) आँचलिक उपन्यास के माध्यम से हाशिए पर जीवन जीने वाले, पिछड़े और अछूते अंचलों को वाणी प्राप्त हुई है। इसने व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि को लक्ष्य बनाया है। इसी कारण इसका रूप पूर्णत: जनतांत्रिक बन गया है। इसने जनसाधारण के जीवन एवं संस्कृति को स्थानीय भाषा के पुट के साथ प्रस्तुत किया है। उपन्यास के कथ्य एवं शिल्प में इसने क्रांतिकारी परिवर्तन किया है।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

'सावधान! नीचे आग है' उपन्यास में चित्रित लोकसंस्कृति

- डॉ. संदीप कीर्दत
चंद्रबाई शांताप्पा शेंडूरे कॉलेज, हुपरी।

प्रस्तावना:

हर एक देश, प्रांत, आँचल, समाज एवं वर्ग की अपनी एक विशेष संस्कृति होती है। वस्तुत: संस्कृति एवं लोकसंस्कृति शब्द का अर्थ एवं परिकल्पना व्यापक है। लोकसंस्कृति लोक जीवन को अपने में संजोए रखती है। किसी भी समाज जीवन का परिचयात्मक एवं अनन्यसाधारण तत्त्व लोकसंस्कृति होता है। हर प्रांत एवं आँचल की लोकसंस्कृति में अंतर होता है। लोकसंस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक विरासत के रूप में पहुँचती है। संबंधित लोक-जीवन से जूड़े पर्व, त्यौहार एवं उत्सव, रूढ़ि-प्रथा-परंपरा, लोकविश्वास, लोकगीत, वस्त्राभूषण, खान-पान और कला, खेल तथा मनोरंजन के साधन लोकसंस्कृति की पहचानकारक इकाइयाँ हैं। आँचलिक उपन्यासकार विशेष क्षेत्र, भूभाग, कस्बा, गाँव एवं आँचल की लोकसंस्कृति का पूरा लेखा-जोखा वहाँ की भाषाशैली के साथ रूपायित करता है, जो पाठक को संबंधित क्षेत्र से सहजतना से रू-ब-रू कराता है।

शीर्षस्थ उपन्यासकार संजीव जी का झरिया आँचल के चंदनपुर कोयला-खदान का सूत्र पकड़कर लिखा बहुचर्चित आँचलिक उपन्यास है-'सावधान! नीचे आग है'। प्रस्तुत उपन्यास के संदर्भ में गोपाल राय की टिप्पणी महत्वपूर्ण है-''सावधान! नीचे आग है' में झरिया क्षेत्र की कोयला खान की एक दुर्घटना को केंद्र में रखकर कोयला माफियाओं, ठेकेदारों और उनके दलालों के स्वार्थी, शोषक और क्रूर रूप का अंकन किया गया है।''[1] स्पष्ट है कि संजीव जी का प्रस्तुत उपन्यास झरिया आँचल के श्रमिक खदान मजदूरों की संघर्षभरी करुण गाथा है। उपन्यासकार ने वहाँ की लोकसंस्कृति का चित्रण कर कोयला खदान मजदूरों की शोषित जिंदगी का खुला हालफनामा प्रस्तुत किया है। विवेच्य उपन्यास में पात्रों की भरमार है, किंतु झरिया आँचल की उपन्यास का नायक है। प्रस्तुत उपन्यास में प्राप्त लोकसंस्कृति के पहलुओं का विवेचन इस तरह है-

लोकसंस्कृति लोकजीवन और लोकगीत की संवाहक होती हैं। लोक-भाषा तथा लोक-बोली में गाए जानेवाले लोकगीतों से मनुष्य की आंतरिक भावनाएँ प्रकट होती हैं। परिणामत: ग्रामीण एवं आँचलिक जीवन में लोकगीतों का अक्षुण्ण महत्व है। 'सावधान! नीचे आग है'

ISBN NO: 978-81-926341-4-2

उपन्यास में झरिया आँचल के कोयला खदान में कार्यरत मजदूर श्रम-परिहार हेतु, शादी-ब्याह, पर्व-तीज-त्यौहार के दिन लोकगीत गाते हैं। लोकगीतों द्वारा मजदूर परिवार की स्त्री मन की पीड़ा व्यक्त करती है तो कभी समस्याओं से मुक्ति की कामना कर लोकमंगल की आशा से प्रभु का गान गाती है। मजदूर सामूहिक तथा वैयक्तिक रूप से लोकगीत गाते हैं। मजदूर कॉलोनी में रहने वाली स्त्रियाँ छठमैया का दर्शन करने के लिए जाते समय सहुआइन के नेतृत्व में लोकगीत गाती हैं। दामोदर नदी के तट की ओर जाने वाली दुबे और ओझा के घर की स्त्रियाँ तथा कपालकुंडला स्वाति जैसी किशोरियाँ और गोकुल की माँ जैसी प्रौढ़ स्त्रियाँ बड़े उत्साह से गीत गाती हुई दिखाई देती हैं-

''नारियर फरि हैं घवद सॅय, ऊपर सुगा मेड़राय,
मारबो रे सुगना धनुष से, सुगना गिरे मुरझाय
सुगनी जो रोवो है वियोग से छठ मैया होऊँ ना सहाय
सुरूज देव होऊँ ना सहाय।''[2]

उक्त उद्धरण से स्पष्ट होता है कि झरिया के लोकजीवन में पर्व एवं उत्सव को अनन्यसाधारण महत्व है। लोकगीत एक ऐसी इकाई है जो पर्व और उत्सव का आनंद बढ़ाती है। मंगतू की पत्नी इंजोरिया ठिठुरती हवा में श्रावणी गीत गाती हुई कपालिनी देवी के मंदिर जाती है, तो हरिजन मजदूरनियाँ मृंदग और मादल के ताल पर झूमकर नाचती हैं। विवेच्य आँचल के लोकगीतों पर आयु एवं प्रसंग का प्रभाव नजर आता है। व्यक्तिगत रूप से गाए जाने वाले गीतों की अपेक्षा समष्टिपरक रूप से गाए जानेवाले लोकगीतों में संगीत साधनों का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

भारत देश की विशेषता विविधता में एकता है। यह विविधता भाषा, धर्म, वेशभूषा एवं खान-पान जैसी सांस्कृतिक इकाइयों में अधिक नजर आती है। झरिया आँचल के लोग अभावग्रस्तता के कारण वस्त्राभूषण की इच्छा दबाकर जीवन निर्वाह करते हैं। उपन्यास में चित्रित खदान मजदूर सिर पर पगड़ी बाँधते हैं। अपना प्रांत छोड़कर आई राजस्थान की मजदूरनियाँ घुटनों तक झुलते घाघरे, कुर्ती, पाँवों में मोठे छड़े, हाथ में कड़े जैसी परंपरागत वस्त्राभूषण से लगाव रखती हैं। चंदनपुर कोयलांचल के आदिवासियों का वस्त्राभूषण साधारण है। नई पीढ़ी पूर्व पीढ़ी के समान अर्धनग्न अवस्था में दिखाई नहीं देती। कई आदिवासी युवक उजली धोती, हरी कमीज और लाप गमछे का फेटा तो युवतियाँ उटँग हरी साड़ी, गुलाबी ब्लाऊज पहनती हैं। हरिजन बस्ती

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

की मजदूरनियाँ नाइलॉन और पटसन की चटख रंगों की सस्ती उठंग साड़ियाँ पहनती हैं। मजदूर स्त्री-पुरुष तीज, त्यौहार और मेले के समय अच्छे-खासे वस्त्र पहनते हैं।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि उपन्यासकार संजीव जी कृत 'सावधान! नीचे आग है' एक श्रेष्ठतम आँचलिक उपन्यास है, जो आँचलिकता की कसोटी पर खरा उतरता है। यह औपन्यासिक रचना सहजता से झरिया आँचल की लोकसंस्कृति से पाठक को रू-ब-रू कर मजदूरों की शोषित जिंदगी का खुला हालफनामा प्रस्तुत करती है। झरिया कोयलांचल में परिलक्षित रूढ़ि-प्रथा-परंपरा, लोकविश्वास, खान-पान, वस्त्रालंकार, पर्व-तीज-त्यौहार एवं उत्सव तथा लोकगीतों का चित्रण झरिया आँचल की यथार्थ लोकसंस्कृति मुखरित कराता है। झरिया क्षेत्र के लोकसांस्कृतिक जीवन पर अत्याधिक परिश्रम, निर्धनता, शोषण, व्यसन तथा अशिक्षा जैसी इकाइयों का प्रभाव परिलक्षित होता है।

- **संदर्भ ग्रंथ सूची:**

1. गोपाल राय-हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ.-375
2. संजीव-सावधान! नीचे आग है, पृ.-176

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

कृष्णा सोबती के 'जिंदगीनामा' उपन्यास में लोकसंस्कृति

-डॉ. हेमलता पाटिल

ए. आर. पाटिल कन्या महाविद्यालय, इचलकरंजी।

प्रस्तावना :

भारतीय संस्कृति में लोकगीत को महत्व है क्योंकि भारतीय संस्कृति के परिचायक लोकगीत रहे हैं। लोकगीत याने जो गीत लोगों ने निर्माण किए हैं, जिस गीत का विषय लोकजीवन से संबंधित है, जो गीत लोगों में प्रचलित हैं। लोकगीत की निर्मिति आत्मा से होती है। आत्मा से फूट पड़ने वाले हर्ष, उल्लास, सुख-दुःख, व्यथा, पीड़ा आदि के स्त्रोत हैं, जो यथासमय गाए जाते हैं। कभी-कभी लोकगीत कुछ समय के लिए लोकसमूह में अस्थायी रूप में प्रचलित रहते हैं। लोकगीतों में लोकवार्ता-तत्त्व समाहित होता है। साथ ही किसी विशिष्ट जाति या लोकसमूह का परिचय भी मिलता है।

लोकगीत का महत्व: लोकगीत में मानव जीवन की निकटता रहती है। इसमें मानवीय जीवन के वासना, प्रेम, घृणा, लालसा, उल्लास तथा विषाद आदि विषयक अनुभूतियों को प्रस्तुत किया जाता है। इन गीतों से लोकमानस के व्यक्तिगत और सामूहिक सुख-दु:ख की लयात्मक अभिव्यक्ति स्पष्ट होती है। ये गीत स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर गाते हैं। इसमें कोई भेदभाव नहीं रहता। दोनों एक ही लय एवं ताल में गाते हैं और उसका आनंद उठाते हैं और दूसरों को भी आनंद देते हैं।

लोकगीतों में ग्रामीण संस्कृति: लोकगीतों में ग्रामीण संस्कृति की विविध परिस्थितियों का दर्शन होता है। ग्रामीण संस्कृति में ये लोकगीत अब भी सुरक्षित रहे हैं। नगरी संस्कृति में इनका अभाव है, वहाँ लोग आधुनिक साधनों से अपना मनोरंजन करते हैं। इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय संस्कृति में लोकगीत ग्रामों के स्तर तक ही जुड़ा हुआ है। ग्रामों की धरती, पहाड़, नदियाँ, उत्सव आदि गीत गाते हैं और सुरक्षित रखते हैं।

'जिंदगीनामा' में लोकगीतों का चित्रण: 'जिंदगीनामा' उपन्यास में लोहड़ी उत्सव का चित्रण है। लोहड़ी में पहले भिजन बिठाया जाता है भिज में शाहनी के पिंउ में गाँव की नारियाँ चरखा लेकर जमा होती हैं। चरखे पर सूत कातती हैं। इस समय खुशी से नारी लोकगीत गाने लगती है; जैसे-

''डोली चढ़ गया मारियाँ हीरची काँ, मैनू लै चहो बाबला लै चलो वे
मैनू रख लै बाबला हीर आँखें, डोली छः कहार नो लै चलो वे।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

साडा बोलना-चालना माफ करना, पंज रोज तेरे घर रह चले वे।''[1]

इन गीतों से भाई-बहन का प्यार भी स्पष्ट होता है। फातमा का भाई पलटन में है। वह गाना गाती है..

''मेरे वीर का सेहरा आया, कोई गाली गूँथ ले आया
उत्ते छत्र नबी का सोहबे, सालयात याह अली।''[2]

फतेह ने सोहनी-महीवाल भी गाया-

''यार-यार तू पई पुकारनी ए जेकर जान कहे महीवाना माये
मेरा रब्ब रसूल ते खास काबा जे इमान कहे महीपाल माये
वाली वारस जो जहान अंदर मेरा खान कहे महीपाल माये
फजल शाह मार तो जान किया मेरी, मेरा जान कहे महीवाल माये।''[3]

गरीब रावयाँ का सुंदर रूप देखकर शाहनी गाने लगती है-

''दीवे की मिट्टी लौ चरखे राँगले
गोरी चिट्टी मुरियारे जैसे चान्नने
छो माह के पलि डोड ठारने
भोरे बैठी शाहनी सूत सँवारने।''[4]

फाग के गीत: 'जिंदगीनामा' उपन्यास में उल्लेख है कि फागुन महीने में फसले पक जाने पर गाँव की जिंदगी में उत्साह आया था। शाहजील की पत्नी शाहनी प्रकृति का यह रूप देखकर खुश होकर बुल्लेशाह का बारमासा गाती है-

''फागुन फुले खेत ज्यों बन तन फूल श्रृंगार
होर डाली फुल्ल फात्तियाँ गल फूलन के हार''[5]

भूत परास्त करने का गीत: 'जिंदगीनामा' के लोग ग्रामीण हैं। वे अंधविश्वासी हैं। भूत-प्रेत पर विश्वास करते हैं। भूत को परास्त करने के लिए जंतर-मंतर का प्रयोग करते समय लोकगीत गाते हैं। सुक्खनी के बेटे का भूत निकालते समय बूढ़ी वडेरी जमालो गजरी गीत गाती है-

''काली चरी चार घरी, काट-काट देही को खाये
पानी बहाये समुद्र का भूत, चुडैल भस्म हो जाये।''[6]

शुभवचन गीत: 'जिंदगीनामा' में घर में कोई बधाइयाँ देने वाली घटना होती है तो गाँव के बड़े लोग उन्हें शुभवचन के रूप में बधाइयाँ देते हैं। करतारों की शादी की बात पक्की हुई है। करतारों

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

ने भगवान पांदे के सामने माथा टेक लिया। भगवान पांदे ने उन्हें आशीर्वाद देकर समझाया-जियो बेटी जियो। अगले घर जा फलो-फूलो। याद रखना

> ''नाग शोभे मदकर नीर शोभे इंदिवर,
> रैन शोभे हिमकर नारी शील रति ते।''[7]

दर्द गीत: 'जिंदगीनामा' में नारी अपने दु:ख को गीतों द्वारा व्यक्त करती है। नारी को पति से कितना भी सुख क्यों न मिले, लेकिन उसे पुत्र प्राप्ति नहीं होती तो वह दु:खी हो जाती है। वे दु:ख अपने गीतों द्वारा व्यक्त करती है। चाची पुत्र प्राप्ति न होने से दु:खी है। यह दु:ख वह बूढ़ापे में भी व्यक्त करती है-

> ''अरी पुत्र मिलने माँग में, न वे हाट बिके
> जो वे मिलते माँग में, मैं लेती दम्मी तोल!''[8]

इन गीतों में लोकसंस्कृति की गरिमा सजीवता से स्पष्ट हुई है। इसमें ऋतुओं के चित्रण का ही वर्णन हो जाता है। उसके साथ-साथ प्रकृति का महत्व और विविध छटाओं के मनोहारी मुग्धकारी, सजीव, सुंदर एवं व्यापक चित्र प्रस्तुत हो जाते हैं। ये चित्रण प्रकृति के साथ-साथ गाँव का भी है। उसमें रीति-रिवाज, परंपराएँ, हर्षोल्लास, राग-विराग, भाई-बहन का प्यार, प्रेम-विरह आदि के दर्शन हो जाते हैं। आधुनिक सभ्यता से लोकगीत लुप्त हो रहे हैं, किंतु कुछ हद तक वे गवई संस्कृति में सुरक्षित हैं; जिसका यथार्थ चित्रण कृष्णा सोबती ने अपने उपन्यास साहित्य में किया है।

➢ संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. कृष्णा सोबती-जिंदगीनामा, पृ.-46
2. वही, पृ.-47
3. वही, पृ.-48
4. वही, पृ.-48
5. वही, पृ.-90
6. वही, पृ.-197
7. वही, पृ.-98
8. वही, पृ.-62

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

हिंदी के आँचलिक उपन्यास और उनका महत्व

-डॉ. रविंद्र पाटिल
राजर्षि छत्रपति शाहू कॉलेज, कोल्हापुर।

प्रस्तावना:

आँचलिक उपन्यासकारों ने साहित्य को गाँवों की मिट्टी से जोड़ने का प्रामाणिक एवं सही प्रयास किया है। वर्तमान परिवेश में अँचलों में अनेक परिवर्तन होने के बावजूद भारतीय संस्कृति की सच्ची तस्वीर छुपी हुई है। इन उपन्यासों में प्राकृतिक परिवेश एवं संस्कृति को अधिक महत्व दिया गया है। आँचलिक उपन्यासकारों ने उपेक्षित अँचलों को साहित्यिक मंच प्रदान किया है।

महत्व: भारतीय संस्कृति की सच्ची तस्वीर आँचलिकता में छुपी है। उसका प्राणतत्व लोकसंस्कृति है। इसमें रचनाकार आँखों-देखी को प्रमाणिकता से स्पष्ट करता है। आँचलिक उपन्यासों में अँचल के लोगों का खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, लोकनृत्य, लोकगीत, लोकसाहित्य आदि बातों का वास्तविक वर्णन होता है। आँचलिकता आज केवल पहाड़ों, लोकगीत, ग्रामों, सागर तक सीमित नहीं है। वर्तमान स्थिति में 'झुग्गी झोपड़ियों' के माध्यम से बड़े-बड़े महानगरों तक आ पहुँची है। आँचलिकता राष्ट्रीयता का प्रतीक भी है। वर्तमान जटिल परिवेश और विघटन के बावजूद भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखा है। आँचलिक उपन्यासों के माध्यम से पाठकों को अँचलों एवं वहाँ की लोकसंस्कृति को समझने का मौका मिल जाता है।

आँचलिक उपन्यास: रेणु पूर्व (सन् 1893 से 1951) के बीच में भी अनेक आँचलिक उपन्यास लिखे गए, परंतु उनमें वह परिपूर्णता नहीं है जो रेणु युग के उपन्यासों में है। रेणु पूर्व युग में भुवनेश्वर मिश्र के 'धराऊ घटना','बलवंत भूमिहार', जगन्नाथ चतुर्वेदी का 'बसंत मालती', हरिऔंध का 'अधखिला फूल' आदि उपन्यास लिखे गए, परंतु इन्हें परिपूर्ण नहीं कहा जा सकता। प्रेमचंद के 'गोदान' ने आँचलिक उपन्यासों की नींव डाली है।

रेणु युग (सन् 1952 से सन् 1966) के बीच अनेक आँचलिक उपन्यास लिखे गए। रेणु को हिंदी आँचलिक उपन्यास साहित्य का 'माईल स्टोन' कहा जाता है। 'मैला आँचल ने पाठकों का दिल झकझोर दिया। 'पूर्णिया' जिले के 'मेरीगंज' की कथा केंद्र में रही है। रेणु के अलावा देवेंद्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिए' (1953), उदयशंकर भट्ट का 'सागर लहरे और मनुष्य', रांगेय राघव का 'कब तक पुकारू' (1958), रामदरश मिश्र 'पानी के प्राचीर' (1961), उपेंद्रनाथ

अश्क का 'पत्थर अल पत्थर' (1957), राजेंद्र अवस्थी का 'सूरज किरण की छांव' (1959) आदि रचनाकारों के उपन्यासों में आँचलिक तत्त्वों का सफल अंकन हुआ है। रेणु युग ने अँचल जीवन के विविध आयामों को उद्घाटित किया है।

रेणुत्तर युग में आँचलिक उपन्यासों का विकास तेजी से हुआ है। इसमें परिवर्तनशील आँचलिक जीवन को तराशने का सफल प्रयास हुआ है। इस युग की रचनाओं में शानी का 'शालवनों का द्विप', श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' (1968), आनंद प्रकाश जैन का 'आठवाँ भँवर' (1969), यादवेंद्र शर्मा का 'हजार घोड़ों का सवार' (1973), विवेकी राय का 'सोनामाटी' (1983), तिलकराज गोस्वामी का 'चंदनमाटी' (1986), संजीव का 'धार' (1990), 'सावधान! नीचे आग है' (1988), मिथिलेश्वर का 'युद्धस्थल', भगवानदास मोरवाल का 'काला पहाड़' आदि उपन्यासों में आँचलिकता का सुंदर चित्रण हुआ है ।

आँचलिक उपन्यासों का महत्व: आँचलिक साहित्यकार अँचल का चित्र प्रस्तुत करते समय वास्तविकता को अपनाता है। भारतीय संस्कृति की सच्ची तस्वीर आँचलिकता में छुपी है; जिसका प्राण तत्त्व लोकसंस्कृति है। आँचलिकता में पिछड़ापन, संघर्ष, अर्थिक समस्या, प्रकृति सौंदर्य जैसी बातें उद्घाटित होती हैं। रचनाकार आँखों देखी को प्रामाणिकता से स्पष्ट करने की कोशिश करता है। आँचलिक उपन्यासों में अँचल के लोगों का खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा, लोकनृत्य, लोकगीत, लोकसाहित्य आदि बातों का वास्तविक वर्णन होता है। आँचलिकता आज केवल पहाड़ों, ग्रामों, सागर तक सीमित नहीं है। वर्तमान स्थिति में 'झुग्गी-झोपड़ियों' के माध्यम से बड़े-बड़े महानगरों तक आ पहुँची है। आँचलिकता राष्ट्रीयता का प्रतीक भी है। देश के विभिन्न अँचल ही मूलत: भारतीय संस्कृति के रक्षक हैं। वर्तमान जटिल परिवेश और विघटन के बावजूद उन्होंने भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखा है। इसमें कहीं भी संकुचित राष्ट्रीयता की भावना नहीं होती बल्कि एकता और सामंजस्य की भावना होती है। इसके कथ्य एवं शिल्प में अनोखापन होता है। यथार्थ चित्रण, प्राकृतिक परिवेश का अंकन, अँचल की भाषा एवं लोकसंस्कृति को महत्व दिया जाता है।

अत: आँचलिक उपन्यास में किसी अँचल का समग्र और यथार्थ चित्रण होता है। इसमें कथानक विस्तृत होता है। आँचलिक उपन्यास के कथानक में भौगोलिक एवं प्राकृतिक परिवेश, लोक-संस्कृति का चित्रण, आत्मीयता, आँचलिक भाषा आदि बातों का चित्रण होता है। परिणामत: पाठकों को अँचलों एवं वहाँ की लोकसंस्कृति को समझने का मौका मिलता है।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

आँचलिक उपन्यासों में राष्ट्रीयता

–डॉ. मनिषा जाधव

कला, वाणिज्य महाविद्यालय, सातारा।

प्रस्तावना :

यह सच है कि राष्ट्र के लिए राष्ट्रीय भावना का होना अत्यंत आवश्यक है। आजादी का आंदोलन राष्ट्रभक्ति का एक प्रमाण था। देश का हर एक व्यक्ति आजादी की जंग का सिपाही बना। गांधी–नेहरू का नेतृत्व और व्यक्ति के मन में पैदा हुई राष्ट्रभक्ति ने गुलामी की जंजीर को तोड़ दिया। अंग्रेज राज समाप्त हुआ। देश का नेतृत्व नेहरू जी ने संभाला और विकास की योजनाएँ शुरू की गईं। उन्होंने आजादी के साथ ही देश विकास के लिए राष्ट्रीय एकात्मता को आवश्यक माना। भारत एक विशाल देश है; जो अनेक भूखंडों, अनेक जातियों, जन–जातियों, सांप्रदायों से बना है। विविधता में एकता उनकी विशेषता है। इस देश में विभिन्न धर्मों के लोग रहते हैं, फिर भी भाईचारा की प्रवृत्ति रही है। हर एक संप्रदाय के धर्मिक नेता एकता की बात उठा रहे हैं। ''मजहब नहीं सीखाता, आपस में बैर रखना, हिंदी हैं हम, हिंदी हैं हम वतन है, हिंदोस्ता हमारा'' यह विचारधारा इसी बात का प्रमाण है। मजहब भूलकर मानवता को श्रेष्ठ धर्म मानने वाला, विश्व को शांति का संदेश देने वाला भारत एक देश रहा है, परंतु आज धर्मांध, मजहबी, मतलबी, सांप्रदायिकता के कारण एक नई समस्या निर्माण हो गई है वह है–'राष्ट्रीय एकात्मता' की।

पहाड़ी आँचलिकता का राष्ट्रीय एकात्मता में योगदान: पहाड़ी जनजातियाँ अधिकतर कबीलाई जीवनशैली अपनाती हैं। जीवन की अस्थिरता, जंगली जानवरों से असुरक्षितता, स्थलांतर आदि के कारण पहाड़ी अँचलों में समूह भावना बढ़ रही है जो राष्ट्रीय एकात्मता का मूलाधार है। परिवारों एवं गाँवों में एकता रही है। मेले–उत्सव–पर्व–त्यौहार, विवाह तथा मृतक संस्कार आदि से समूह भावना प्रबल हो रही हैं। नागरी संस्कृति की अपेक्षा पहाड़ी संस्कृति में समूह भावना अधिक मात्रा में दिखाई देती है। अन्याय के खिलाफ, अनैतिकता के विरुद्ध संघर्ष करके समूह भावना को बढ़ाना, समूह भावना वृद्धिंगत करना राष्ट्रीय एकात्मता के लिए आज अनिवार्य है। व्यक्ति को उसके परिपार्श्व तथा उसके वैयक्तिक कोश से मुक्त कर पहाड़ी आँचलिक उपन्यासों ने उसे मानव का सामूहिक स्वरूप प्रदान कर राष्ट्रीय एकात्मता को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

पहाड़ी आँचलिक उपन्यासों का राष्ट्रीय एकात्मता में योगदान: आँचलिकता का एक आयाम पहाड़ी आँचलिकता है। पहाड़ी अँचलों में दूरदराज-अविकसित प्रदेशों के निवासी की कथा-व्यथा स्पष्ट करने वाली रचनाएँ पहाड़ी आँचलिक हैं। हिंदी आँचलिक उपन्यासों में अल्मोडा, कुमायूँ, विंध्याचल, बस्तर, छत्तीसगढ़, कुलुघाटी, अबूझमाड़, नैनीताल, सह्याद्रि अखली जैसे पहाड़ी अँचलों में रहने वाली नट, करनट, गोंड, संथाल, भील, कातकरी आदि जन-जातियों की जीवन कहानी कही है। पहाड़ी अँचल आज भी अविकसित, उपेक्षित, शोषित रहा है। सरकारी विकास योजना से उसमें परिवर्तन हो रहा है। हिंदी के आँचलिक उपन्यासकारों की दृष्टि से उसमें परिवर्तन हो रहा है। हिंदी के आँचलिक उपन्यासकारों की दृष्टि वहाँ पहुँची है। 'जो न देखे रवि वह देखे कवि' यह उक्ति पहाड़ी आँचलिकता के संदर्भ में यथार्थ लगती है। जहाँ सूरज की किरणें नहीं पहुँचती वहाँ साहित्यकारों की दृष्टि पहुँची है। साहित्यकारों ने वहाँ के जन-जीवन को साहित्य कृति का विषय बनाया है। हिंदी के आँचलिक उपन्यासकार अँचल विशेष के जन-जीवन को स्पष्ट करते हैं या किसी अपरिचित और आदिम जातियों के जीवन का चित्रण करते हैं। उदयशंकर भट्ट का 'सागर लहरें और मनुष्य', राजेंद्र अवस्थी का 'जंगल के फूल', शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष', रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ', राजेंद्र अवस्थी का 'सूरज किरण की छाँव', 'सुबह की तलाश', 'जंगल के आसपास', 'भूख', 'मोंगरा', 'चंद्रवदनी', 'शाल वनों का द्विप', 'खारे जल का गाँव', 'वनवासी' आदि कई रचनाएँ महत्वपूर्ण हैं; जो पहाड़ी जन-जीवन का वहाँ की विशिष्ट जनसंस्कृतियों का चित्रण करती हैं।

पहाड़ी आँचलिक उपन्यास जनपद के संपूर्ण सुख-दुःख समूचे राग-विराग के भोग का प्रत्यक्ष चित्रण प्रस्तुत करता है। उसके पात्र स्थानीय विशेषताओं से संपन्न वर्णगत होते हैं और अँचल की विशिष्टताओं में विकसित होने के कारण अपना पृथक अस्तित्व और आकर्षण रखते हैं। आँचलिक उपन्यास में लोकाचार, लोकपर्व, लोकसंस्कृति, लोकभाषा, लोककथा, लोकनृत्य, कहावतें, लोकोक्तियाँ आदि का यथार्थ प्रयोग किया जाता है। अत: स्पष्ट है कि अँचल की समग्रता का वर्णन पहाड़ी आँचलिकता है। स्थानीय बोलीभाषा के प्रयोग के कारण उपन्यास प्रभावी बने हैं। यथार्थता, वास्तविकता उनकी प्रकृति रही है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि आजादी के पश्चात् एवं इक्कीसवीं सदी में भी एकात्मता की आवश्यकता है। साहित्यकार साहित्य सृजन के साथ-साथ एकात्मता की स्थापना का प्रयास करता है। दूर-दराज में रहने वाले आदिम, पिछड़ी, दलित, उपेक्षित, अविकसित,

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

जन-जीवन की व्यथा-कथा बतलाने वाली रचनाएँ सिर्फ मनोरंजन का साधन नहीं बल्कि भाव बोध यथार्थता का प्रतीक हैं। इन्हीं रचनाओं से प्रभावित लोग उस अँचल की यात्रा करके जन-जीवन के दर्शन करते हैं। यायावरी, घुमक्कड़ मानवी प्रवृत्ति है, साहित्यकार इसके लिए अपवाद नहीं है। हिंदी के उपन्यासकारों ने यात्रा, पहाड़ी अँचलों में निवास, वहाँ के जन-जीवन के साथ संबंधित रचनाएँ लिखी हैं; जैसे-'शाल वनों का द्विप', 'चंद्रवदनी', 'खारे जल का गाँव', 'भूख' आदि। इस तरह की रचनाएँ उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक धरोहर बनी हुई हैं। अत: लोगों को आकर्षित करने में सफल रही हैं।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

हिंदी के आँचलिक उपन्यासों की विशेषताएँ
(‘आधा गाँव’ के संदर्भ में)

-डॉ. विनायक कुरणे

बाळासाहेब देसाई महाविद्यालय, पाटन।

प्रस्तावना:

ग्रामीण जीवन का अध्ययन आज की युगीन आवश्यकता है। आँचलिक कहानियाँ और उपन्यासों में ग्रामीण जीवन का यथार्थ चित्रण मिलता है। हिंदी के उपन्यासकारों ने ग्रामीण जीवन को भली-भाँति समझकर उसका चित्रण अपने उपन्यासों में किया है। भारत के विभिन्न-उपेक्षित अँचलों का चित्रण इनमें मिलता है। ‘‘आँचलिक उपन्यास एक सीमित अँचल या क्षेत्र विशेष के सर्वांगीण जीवन को जिसमें वहाँ के साधारण-असाधारण विवरण, परिचित-अपरिचित भूमियों का उद्घाटन, विविध छवियों-कुछवियों का अंकन आदि निहित होता है। वस्तुन्मुखी दृष्टि से रूपायित करता है तथा इसमें रचनाशीलता का नया आग्रह एवं लोकधर्मी भाषा बोली-उपबोलियों की भी विविध भंगिमाएँ निहित होती हैं ।’’[1] अत: आँचलिक उपन्यास साहित्य के लिए मूल्यवान देन है। डॉ. राही मासूम रजा का ‘आधा गाँव’ एक बहुचर्चित आँचलिक उपन्यास है।

पूर्वी उत्तर प्रदेश के एक अँचल गंगौल (जो गाजीपुर जिले में है) के शीआ मुसलमानों के जीवन पर यह उपन्यास लिखा गया है। गाँव के अन्य निवासियों का चित्रण उतना ही है, जितना शीआओं के जीवन के चित्रण के लिए अनिवार्य था। शीआ मुसलमान गाँव के एक भाग का ही प्रतिनिधित्व करते हैं, इसलिए उपन्यास का नाम ‘आधा गाँव’ रखा गया है। इसमें संपूर्ण गाँव की विशेषताओं का वर्णन प्राप्त नहीं होता बल्कि वहाँ निवास करने वाले मुस्लिम परिवारों की सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक जीवन प्रणाली को अंकित किया गया है। ‘आधा गाँव’ उपन्यास की विशेषताएँ निम्न प्रकार से हैं-

नायक विहिन उपन्यास: ‘आधा गाँव’ उपन्यास नायक विहिन है। कारण यह है कि डॉ. राही ने किसी भी पात्र को कथानक में अधिक महत्व नहीं दिया है; जिसे उपन्यास का नायक कहा जा सके। ‘‘ ‘आधा गाँव’ भारत के राजनीतिक इतिहास के एक महत्वपूर्ण घटना और उससे उत्पन्न त्रासद परिणामों को लेकर लिखा गया है, जिसके कारण कोई विशिष्ट चरित्र इसमें उभर नहीं पाया जिनके इर्द-गिर्द ‘आधा गाँव’ घूमता दिखाई दे सके तथा जिसे नायक अथवा नायिका की संज्ञा दी जा सके।’’[2]

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

शिआ मुसलमानों का चित्रण: 'आधा गाँव' उपन्यास में शिआ मुसलमानों का चित्रण पूरे यथार्थ के साथ रेखांकित किया है। साथ ही आँचलिक जीवन की समग्र मानसिकता को पकड़ने का सफल प्रयास किया गया है। गंगौली के शिआ मुसलमान छोटे-बड़े जमींदार हैं। मुहर्रम, मातम, मर्सिये, ताजिये, उर्स, मजलिसें इनके जीवन का केंद्र हैं और इनके माध्यम से ही गंगौली का लोकजीवन स्पष्ट होता है।

मुहर्रम का समग्र चित्रण: गंगौली गाँव में मोहर्रम का अपना विशेष महत्त्व है जिससे गंगौली वासियों का लोकजीवन स्पष्ट होता है। बकरी ईद के पश्चात् सभी मुहर्रम की तैयारियाँ करते हैं। मुहर्रम के अवसर पर ग्रामीण वातावरण 'बोल मुहम्मदी या हुसैन' की ध्वनि से गूँज उठता है।

अँचल का समग्र चित्रण: आँचलिक उपन्यास का नायक अँचल होने के कारण उसके केंद्र में समाज होता है। डॉ. रामदरश मिश्र आँचलिक उपन्यासों की संरचना विधि के बारे में लिखते हैं- ''अँचल जीवन के जटिल चित्र को अंकित करने के लिए लेखक कहीं मोटी रेखाएँ खिंचता है तो कहीं पतली, कहीं अवकाशों को भरने के लिए दो-चार बिंदु अपनी तुपकी के झाड़ देता है। अपने पर्वों, उत्सवों, परंपराओं, विश्वासों, व्यथा के अवसरों, गीतों, संघर्षों, प्रकृति के रंगों, पुराने-नए जीवन मूल्यों, जातियों आदि से लिपटा हुआ अँचल का जीवन अभिव्यक्ति के लिए नए माध्यम की अपेक्षा करता है।''[3]

समय की गति: 'आधा गाँव' उपन्यास में डॉ. राही ने ''कुछ दशकों के अंतराल में फैले हुए समय की गति को केंद्रीय विषय बनाया है। यह कहानी गंगौली में गुजरनेवाले समय की कहानी है।''4 समय की अवधि में घटनेवाली घटनाओं को राही ने शब्दों में बाँधा हैं। 'आधा गाँव' लेखक का सफर है; जो उद्गम्, मिया लोग, ताना-बाना, नमक, गाथा, प्यास, भूमिका, तनहाई की कई मंजिलों से गुजरता हुआ नई-पुरानी रेखाओं को पर समाप्त होता है।

स्त्री-पुरुषों के संबंधों का अत्याधिक चित्रण: उपन्यास में अनैतिक-संबंधों के वैविध्यपूर्ण तथ्यों को प्रकट किया गया है। जमींदारी उन्मूलन से गंगौली के शीआ मुसलमानों की जिंदगी अभावों से परिपूर्ण है, परंतु अनैतिक संबंधों की कमी नहीं। अनैतिक यौन-संबंध में 'आधा गाँव' का पूरे का पूरा ओवा हमें भ्रष्ट दिखाई देता है। अनैतिक यौन संबंधों से उपन्यास भरा हुआ है और यही यौन-संबंध इस उपन्यास के आकर्षण का मूल तत्त्व है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि डॉ. राही का 'आधा गाँव' बहुचर्चित आँचलिक उपन्यास है। उपन्यास में शिआ मुसलमानों के जीवन का सूक्ष्मता से चित्रण किया है। उपन्यास में

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

अँचल ही नायक होने के कारण उसकी विशेषताओं को रेखांकित करने के लिए सौ से भी अधिक पात्रों का चित्रण किया गया है; जिससे उत्तर पूर्वी प्रदेश के अँचल गंगौली गाँव का सजीव चित्रण हुआ है।

- **संदर्भ ग्रंथ सूची:**

1. डॉ. ज्ञानचंद गुप्त-आँचलिक उपन्यास: संवेदना और शिल्प, पृ.-13
2. डॉ. दिलशाद जिलानी-आधा गाँव: एक आलोचनात्मक अध्ययन, पृ.-53
3. डॉ. रामदरश मिश्र-हिंदी उपन्यास: एक अंतर्यात्रा, पृ.-190
4. डॉ. दिलशाद जिलानी-आधा गाँव: एक आलोचनात्मक अध्ययन, पृ.-11

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

मिथिलेश्वर के उपन्यासों में चित्रित लोकसंस्कृति

-डॉ. श्रीकांत पाटिल
कला महाविद्यालय, कोवाड।

प्रस्तावना:

मिथिलेश्वर हिंदी साहित्य के ग्रामीण परिवेश के एक चर्चित कथाकार है। उनके लगभग छ: उपन्यास प्रकाशित हुए हैं। मिथिलेश्वर ने अपने उपन्यासों के माध्यम से अपनी जन्मभूमि की भोजपुरी लोकसंस्कृति को वाणी देने का सफल प्रयास किया है। उन्होंने अपने उपन्यासों में भोजपुरी भाषा तथा लोकसंस्कृति को यथावत प्रस्तुत किए जाने के प्रयोग से भोजपुरी लोगों की सामाजिक स्थितियों का दृश्य अंकन सजीव हो उठा है। मिथिलेश्वर स्थानीय लोकसंस्कृति में स्थित जनमानस के हृदयपक्ष को परखते हैं तथा भोजपुरी जनता के समग्र अंतर्मन का यथोचित वर्णन अपने उपन्यासों में करते हैं ।

लोकगीत: 'यह अंत नहीं' उपन्यास में वर्णित भोजपुर जिले के जोरावरपुर गाँव में बारिश न होने पर सब्जियों की खेती सुख जाती है। तब किसान बैलों से लोहे के गोलाकार रहट लगाकर कुएँ से पानी बाहर निकालकर सूखी खेती को देते थे। उसी समय रहट की आवाज के साथ किसान चरसी गीत गाता है-

''गोरियो के नैना ह बुनिया मिठाई।
तनि हेनिओ चलइह हमार किरिये।''[1]

'माटी कहे कुम्हार से' उपन्यास में वर्णित बिहार प्रांत के भोजपुर जिले के गांगी किनारे स्थित 'नरही' नामक झोपड़पट्टी की औरतें विवाह संबंध रस्म-रिवाजों के समय कन्या की बाजू में खड़ी होती है और सीतल मइया के गीत गाती है-

''निमिया के हाड मइया झूलेली हिंडोलवा कि झूमी-झूमीना,
सातो बहिनि गावेलि गीत कि झूमी-झूमी ना....।''[2]

लोककथा: 'प्रेम न बाड़ी ऊपजें' उपन्यास में बिहारी लोक जीवन में स्थित अनेक लोककथाओं का वर्णन प्राप्त होता है। जैसे 'एक भूखा नरभक्षी राक्षस की कथा', 'एक चिड़िया और तीन राहगीर की कथा' आदि। मिथिलेश्वर के 'माटी कहे कुम्हार से' उपन्यास में वर्णित बिहार के भोजपुर जिले के बजरंगपुर गाँव में अनेक लोककथाएँ प्रचलित हैं। जैसे-'जम्बुक बोला ई गनि तू का बोला काग की कथा', 'एक राजा की कथा', 'चिड़िया और बूँट के दाने की कथा' आदि।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

लोक-नृत्य: मिथिलेश्वर के 'माटी कहे कुम्हार से' उपन्यास में बिहार प्रांत के भोजपुर जिले में गांगी के किनारे स्थित 'नरही' नामक झोपड़पट्टी में होने वाले नृत्य का बड़ा जीवंत रूप प्रस्तुत हुआ है। यहाँ झोपड़पट्टी के नृत्य में अधिकतर ढोल बज उठते हैं। झोपड़पट्टी के लोग विभिन्न अवसरों पर दारू-ताड़ी पीकर लोकनृत्य करते हैं।

लोकनाट्य: लोकसंस्कृति में लोकनाट्य का महत्वपूर्ण स्थान पाया जाता है। भारतीय ग्राम एवं अँचलों में लोकनाट्य का प्राचीन तथा पूर्णत: जनधर्मी रूप दिखाई देता है। 'युद्धस्थल' उपन्यास में बिहार प्रांत के भोजपुर जिले के भरतपुर गाँव के लोक-जीवन में प्रचलित 'बिदेसिया' लोकनाट्य का चित्रण हुआ है।

पर्व-त्यौहार: मिथिलेश्वर के 'प्रेम न बाड़ी ऊपजें' उपन्यास में होली, रामनवमी, वीर कुँवरसिंह विजयोत्सव, नागपंचमी, रक्षा-बंधन, श्रीकृष्ण जन्माष्टमी, दशहरा, दिवाली, मकर संक्रांति, बसंत पंचमी आदि पर्वों एवं त्यौहारों का चित्रण हुआ है।

मेले: 'प्रेम न बाड़ी ऊपजें' उपन्यास में चित्रित बिहार के आरा में नए वर्ष के उपलक्ष्य में सोन नदी के पास रेत पर मेले की तैयारी बड़ी धूम-धाम से चलती है। इस मेले का आनंद लेने के लिए दूर-दूर से लोग आरा में आते हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मिथिलेश्वर के उपन्यासों में ज्यादातर बिहार का प्रसिद्ध लोकनाट्य बिदेसिया और नौटंकी का ही चित्रण हुआ है। भारतीय आँचलिक जीवन में धर्म एवं संस्कृति के प्रभाव के कारण ग्रामीण लोग पर्वों-त्यौहारों को बड़ी धूमधाम और उत्साह के साथ मनाते हैं। इसका यथार्थ चित्रण मिथिलेश्वर के उपन्यासों में मिलता है। मिथिलेश्वर ने अपने उपन्यासों में विविधि पर्वों-त्यौहारों के समय लगनेवाले सोनपुर मेले का यथार्थ चित्रण किया गया है।

➢ संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. मिथिलेश्वर-यह अंत नहीं, पृ.-75
2. मिथिलेश्वर-माटी कहे कुम्हार से, पृ.-59

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

समता, स्वतंत्रता, संघर्ष की महागाथा : ‘बाजत अनहद ढोल’

प्रा. संजय नईनवाड
एस. बी. झाडबुके महाविद्यालय, बार्शी

मधुकर सिंह द्वारा लिखित ‘बाजत अनहद ढोल’ उपन्यास सन् 2003 ई. में वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित हुआ है। झारखंड के संताल आदिवासियों द्वारा दमनकारी ब्रितानिया हुकूमत के खिलाफ चलाए गए स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि में लिखी गई यह महागाथा है। हिंदुस्थान में दमनकारी ब्रितानिया हुकूमत के खिलाफ बगावत का बिगुल सर्वप्रथम झारखंड में ही बजा था। इस स्वतंत्रता आंदोलन की बगावत के पुरोधा थे संताल हुल के नायक सिद्धो, कान्हो, चाँद, भैरो, गोको नायक, वीर सिंह माझी। इन नायकों ने आदिवासियों में देशप्रेम, स्वाधीनता की चेतना, अपने जल-जंगल-जमीन के लिए मर-मिटने का जज्बा जगाया था। इनके नेतृत्व में आदिवासी संगठित हुए, जिसके चलते दमनकारी सत्ता को देश खदेड़ने का हौसला आदिवासियों में बुलंद हुआ, लेकिन ब्रिटिशों ने सन् 1855 ई. में मार्शल लॉ लागू करके इनके द्वारा चलाए गए स्वतंत्रता आंदोलन को राजद्रोह करार देकर बड़ी निर्ममता से कुचल दिया; जिसका दस्तावेज प्रस्तुत उपन्यास है।

उपन्यास के शुरुआत में ही पता चलता है कि किस प्रकार देश की बागडोर मुगलों के हाथों से छूटकर इस्ट इंडिया कंपनी के हाथों में आने से कंपनी ने लगान वसूलना शुरू किया था। इसके विरुद्ध संताल परगना के उत्तरी और मुंगेर-भागलपुर के दक्षिणी हिस्से में बसे पहाड़ियों ने विरोध दर्शाया तो उन्हें विद्रोही कहकर अत्यंत निर्ममता से कुचलना शुरू किया। गिरफ्तारियाँ, गोलाबारी, हत्याओं के सिलसिले से उपन्यास की शुरुआत होती है। अंग्रेजों ने शातिर चाल चलते हुए यहाँ के देशी जमींदारों, महाजनों और सामंतों से मिलकर अन्याय-अत्याचार और दमन का सिलसिला और तेज कर दिया। दोनों मिलकर अवाम का अनन्वित शोषण करने लगे। भोगनडीहा का सुकेल इस शोषण का विरोध करना चाहता है।

कंपनी ने इलाके में नील की खेती शुरू की थी। आदिवासियों को जबरन नील की खेती करने के लिए मजबूर किया जाता। उपज होने पर मनमाने तरीके से कंपनी के अधिकारी ले जाने लगे थे। भोगनड़ीहा में अंग्रेज अधिकारी पोटन आदिवासियों पर अन्याय-अत्याचार कर रहा था। इस अधिकारी का साथ देने के लिए दरोगा महेशलाल दत्त सदा तत्पर रहता था। संताल इनसे तंग आए थे। भोगनगड़ीहा का सुकेल आदिवासियों में अन्याय-अत्याचार के विरुद्ध चेतना जगाता

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

है। भोगनड़ीहा के वीरसिंह माझी के नेतृत्व में दल का गठन किया जाता है। इस दल में सुकेल शामिल हो जाता है। वीरसिंह माझी दल के उद्देश्य से आदिवासियों को अवगत कराते हैं-''कोई भी लड़ाई बुराई के खिलाफ शुरू होती है। हमारी यह लड़ाई अपढ़ता, शराब, जुआ और डायन, जादू-टोना के खिलाफ... आज हम आखर से नाता-रिश्ता बनाएँगे। शराब हँड़िया का इस्तेमाल नहीं करेंगे, न ही डायन, जादू-टोना में विश्वास रखेंगे।''[1] इस प्रकार इलाके के आदिवासियों में सुधार लाने का कार्य इस दल के द्वारा किया जाता है। इस सुधार आंदोलन में जोबा, सुमो और तालो जैसी महिलाओं का भी महत्वपूर्ण योगदान प्राप्त होता है।

संताल विद्रोहियों ने हुकूमत के खिलाफ गतिविधियाँ तेज कर दी है। उन्होंने छापामार पद्धति अपना कर आंदोलन को जारी रखा। इससे ब्रिटिश सत्ता बौखला गई। फौजों ने जुल्म का नंगा-नाच शुरू किया। हजारों जवान, बच्चे, बूढ़े महिलाओं को मार दिया गया। उन्होंने संताल बस्तियाँ वीरान करना शुरू किया। पूरा संताल परगना लाशों के ढेर से पटा दिया गया। चाँद और भैरो को फाँसी दी गई। अनेक विद्रोहियों को जेल में बंद कर दिया गया। सिद्धों के लिए यह बहुत बड़ी पराजय थी। वे फिर से आंदोलन को खड़ा करने के लिए जंगल-जंगल घुमते हुए बिखरे आदिवासियों को संगठित करने लगे, लेकिन देशद्रोहियों ने उनका पता अंग्रेजों को बता दिया और उन्हें पकड़कर फाँसी दे दी गई। इस घटना के बाद अंग्रेजों को लगा कि संताल विद्रोह दब जाएगा, लेकिन सिद्धों ने संतालियों में गरिमा-ज्ञान, आजादी और अस्मिता की चेतना को जगाया था, उन्होंने दोस्त और दुश्मन की पहचान आदिवासियों को करा दी थी। भले ही संतालों को नायक सिद्धों की तरह फाँसी पर झूलना क्यों न पड़े, लेकिन अंतिम साँस तक आजादी की लड़ाई लड़ेगा। अंग्रेजों की आत्मसमर्पण की घोषणा व्यर्थ साबित हुई। आखिरकार सरकार ने पूरे संतान परगना में 14 नवंबर, 1855 में मार्शल लॉ लागू कर दिया। पचीस हजार से भी अधिक फौज को संताल परगना में बिछा दिया गया। संताल विद्रोह के पहले संताल परगना नामक कोई जिला नहीं था। यह जंगल-तराईवाला इलाका था-एक भरा-पूरा झारखंड। उसी साल कानून बनाकर अंग्रेजों ने संताल परगना का निर्माण किया। सरकार ने इस जनपद के लिए विशेष कानून बनाया जो देश के अन्य इलाकों से बिल्कुल भिन्न था और इसी कानून के बल पर संताल-विद्रोह को दबा दिया गया।

➢ संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. मधुकर सिंह-बाजत अनहद ढोल, पृ.-19

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

आँचलिक उपन्यासों की शिल्पविधि

-प्रा. अजयकुमार कांबळे
आर्टस् कॉलेज, कोवाड।

प्रस्तावना:

आधुनिक काल की सबसे शक्तिशाली एवं लोकप्रिय विधा उपन्यास है, जो निरंतर विकसनशील रही है। इसीलिए इसे जीवनकला भी मानते हैं। मानवीय जीवन का गहरे भावबोध से वैविध्यपूर्ण अंकन करनेवाली विधा उपन्यास है; जिसमें मानवीय मूल्यों का भी यथार्थ चित्रण मिलता है, परंतु उपन्यास निरंतर परिवर्तन को चित्रित करता रहा है। समय के बदलाव के साथ अनुभवों का नया धरातल उपन्यास में मिलता है। प्रेमचंद पूर्व उपन्यास का आरंभ हुआ। साथ ही विभिन्न प्रकार एवं दौर से गुजरते हुए उपन्यास विधा ने अपने समय की अनुभूति को विशेष रूप से उकेरा है। उपन्यास को विभिन्न धारा में आँचलिक उपन्यास अपनी कथ्य एवं शिल्प की दृष्टि से एक अलग-सा महत्व रखते हैं। आँचलिक उपन्यासकारों ने अपने परिवेशगत प्रश्न एवं समस्याओं को नए दृष्टिकोण से रूपायित किया है। सामाजिक जीवन का यथार्थ चित्रण सभी पहलुओं के साथ आँचलिक उपन्यासों में मिलता है। गाँव-देहात के छोटे-बड़े संघर्ष, गंदगी, अच्छी-बुरी तस्वीरें, स्त्री-पुरुष संबंध, भ्रष्टाचार, सड़ी-गली, रूढ़ियाँ, परंपराएँ आदि का पर्याप्त चित्रण आँचलिक उपन्यासों में मिलता है, परंतु यह आँचलिकता यथार्थ में क्या है? इस पर भी विचार करना लाजमी बन जाता है।

आधुनिक गद्‌य साहित्य में सबसे सशक्त साहित्य विधा के रूप में उपन्यास प्रसिद्‌ध है। प्रेमचंद पूर्व, प्रेमचंद काल एवं प्रेमचंदोत्तर युग के रूप में उपन्यास का दौर मिलता है। आँचलिक उपन्यास परंपरा में एक अलग एवं विशेष प्रकार है। क्षेत्र विशेष एवं स्थानीय रंग संकेतों के साथ, भौगोलिक अलगता के साथ चित्रित मनुष्य जीवन आँचलिक है। अँचल विशेष शहर से दूर एक उपेक्षित भूखंड होता है जहाँ की जीवन प्रणाली, रीति-रिवाज, मान्यताएँ अलग होती हैं, जिसके कारण अँचल विशेष के लोगों का जीवन गतिशील रहता है। आँचलिक उपन्यास हर मामले में अपनी अलगता दर्शाता है। आँचलिक भाषा, बोली एवं उपभाषा की अलगता के कारण एक प्रकार की खिचड़ी भाषा का प्रयोग ही होता है ऐसा कहा जाए तो अनुचित नहीं होगा। आँचलिक भाषा में मुहावरे, कहावतें, लोकगीतों एवं लोक संस्कृति आदि की विशेषताएँ दिखाई देती हैं, जो अन्य पाठकों के समझ के लिए दुर्वह बन जाती है। अत: आँचलिक उपन्यासों के

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

अनुवाद कार्य में यह कठिनता अक्सर आ जाती है। आँचलिक उपन्यासों में देखे तथा भोगे क्षणों का दस्तावेज तो होता है, परंतु यह उस विशेष आँचल की भौगोलिकता के साथ-साथ यथार्थ के पहलुओं को उल्लेखित करनेवाले हैं। इस पूरी प्रक्रिया में आँचलिक भाषा ने तूलिका का काम किया है। आँचलिक उपन्यासों की भाषा ने निश्चित रूप में अपना योगदान दिया है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने अपने उपन्यासों के द्वारा संवेदनशील भाषा में चमत्कारिकता के द्वारा गाँव की मानसिकता, संस्कृति, विभिन्न प्रकार की ध्वनियाँ तथा उनकी खनक आदि को दर्शाया है।

रांगेय राघव ने 'कब तक पुकारूँ' में ध्वनियों, बिंबों एवं प्रतीकात्मकता के द्वारा काव्यात्मकता को रूपायित किया है। उनके उपन्यासों में आँचल की भाषा का ताजगीभरा एवं सौंदर्यपूर्ण रूप नजर आता है। 'रागदरबारी' उपन्यास के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल ने व्यंग्यात्मक गाँव-देहात की भाषा के द्वारा चमत्कारिकता एवं हास्यात्मकता के दर्शन कराएँ हैं। नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों में बिहार के लोकजीवन की भाषा का प्रयोग मिलता है। रेणु जी ने 'मैला आँचल' में प्रतीकात्मकता, बिंबात्मकता एवं सांकेतिक रंग-संकेतों के दर्शन कराएँ हैं। डॉ. राही मासूम रजा ने 'आधा गाँव' उपन्यास में बिंब, प्रतीक, व्यंग्य के माध्यम से विभिन्न प्रकार की विसंगतियों को उजागर किया है।

रोजमर्रा के प्रसंगों में भी लेखक ने अपनी भाषा के द्वारा प्राण फूँकने का प्रयास किया है। रामदरश मिश्र ने 'जल टूटता हुआ' उपन्यास में विभिन्न मनस्थितियों एवं प्रसंगों को बिंबात्मक प्रवृत्ति के द्वारा अंकित किया है। मिश्र जी ने विभिन्न रंग-संकेतों, प्रतीकों, ध्वनियों को सफलता से अभिव्यंजित किया है। शिवप्रसाद सिंह ने 'अलग-अलग वैतरणी' उपन्यास में चौंकानेवाली नवीनता एवं प्रयोगों से दूर रहकर सार्थकता का प्रयोग किया है। उन्होंने लोकभाषा को खड़ी बोली में मिलाकर नए ढंग में प्रस्तुत किया है।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

आँचलिक उपन्यासों की शिल्पविधि

-प्रा. लीला भिंगारदेवे

जीवन प्रबोधनी कन्या महाविद्यालय, विटा।

प्रस्तावना:

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासकारों ने अपने आपको पिछले उपन्यासों की परंपरा से अलग करने का प्रयास किया है। बदलते वातावरण के साथ-साथ उपन्यास लिखे जाने लगे और ये उपन्यास थे आँचलिक बोध के माध्यम से नए कथांचलों की खोज ही नहीं हुई, वरन् इनके माध्यम से जीवन में से और यथार्थ में से तलाशने की प्रवृत्ति बढ़ी। प्रेमचंद के जमाने से लेकर आज तक का आँचलिक परिदृश्य स्पष्ट रूप से बदल गया है। गाँव का पूरा परिदृश्य स्वाभाविक हैं। इसे ही आँचलिक अभिव्यक्ति प्रदान करने का प्रयास रहा है।

आँचलिक उपन्यासों की शिल्पविधि: वस्तुशिल्प: उपन्यास व्यापक जीवन की कथा कहता है, परंतु एक केंद्रीय कथा के माध्यम से अत: उसकी कथावस्तु में फैलाव होने के साथ आंतरिक एकात्म्य होता है। कथा की प्रवृत्ति के आधार पर यह एकात्म कई रूपों में प्राप्त होता है। आँचलिक उपन्यास की कथावस्तु में अन्य उपन्यासों की कथावस्तु की तुलना और एक प्रमुख अंतर दिखाई देता है। शुद्ध वस्तु की दृष्टि से कथा में एकसूत्रता या सुसंबद्धतता दिखाई नहीं देती। 'परती कथा' पर तो आरोप ही यह लगाया जाता है उसमें कोई केंद्रीय कथा-वस्तु नहीं है। आरोप उचित भी है और नहीं भी। यदि विचार से हो तब तो प्रवृत्ति होती ही नहीं उसमें बिखराव की प्रवृत्ति होती है क्योंकि उसका उद्देश्य अँचल के जीवन को समग्र रूप में प्रस्तुत करना होता है। इस बिखराव में एकरूपता नहीं होती। कहीं यह कथागत होता है और कहीं जीवनगत। 'परती परिकथा', 'सागर लहरें और मनुष्य', 'वरूण के बेटे' आदि उपन्यासों में कथागत और 'कब तक पुकारूँ', 'बलचनमा', 'काका' आदि उपन्यासों में जीवनगत। आँचलिक उपन्यास की कथा क्षेत्र विशेष की कथा होती है और इस क्षेत्र विशेष में आँचलिकता उस क्षेत्र विशेष के यथार्थ जीवन पर दृष्टि होने के कारण अवतरित होती है।

पात्र एवं चरित्र-चित्रणगत शिल्प: पात्र कल्पना एवं चरित्र कल्पना का जो अभिनव रूप आँचलिक उपन्यासों में देखने में आता है, वह आँचलिकता की अवधारणा में विशेष रूप से सहायक होता है। पात्रों का प्रस्तुतीकरण एवं उसका चरित्र-निरूपण उपन्यास की प्राथमिक आवश्यकता होती है।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

देश-काल एवं वातावरणगत शिल्प: देश-काल एवं वातावरण उपन्यास का अनिवार्य तत्त्व है। किसी मानव समाज की कथा उपन्यास का लक्ष्य होता है। वह किसी देश में ही निवास करनेवाला होता है। देश का अर्थ यहाँ स्थान है। यह स्थान एक भौगोलिक एवं सामाजिक इकाई होती है। भौगोलिक इसलिए कि उसकी भूमि पर स्थित होती है और सामाजिक इसलिए कि उस समाज की अपनी विशेषताएँ होती हैं जो भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा नियंत्रित होती है। इन दोनों भौतिक वस्तुओं के प्रभाव के रूप में एक अन्य वस्तु प्रकट होती है, जिसे वातावरण कहते हैं। वातावरण भौतिक विशेषताओं से उत्पन्न एक अभौतिक वस्तु होती है, जो अनुभूति द्वारा ही अनुभव की जा सकती है। अपने निर्माण तत्त्वों के आधार पर इस वातावरण के दो पक्ष होते हैं-सामाजिक और भौगोलिक।

जीवन दर्शनगत उपलब्धियाँ एवं तद्विषयक शिल्प: 'दर्शन' दार्शनिक का क्षेत्र होता है और 'जीवन दर्शन' का दार्शनिक अपने चिंतन में सोद्देश्य लक्ष्य निर्धारित करके प्रवृत्त होता है। कलाकार का अनजाने ही एक दृष्टिकोण बन जाता है और अनजाने ही वह उसकी कला में अभिव्यक्त हो जाता है। उपन्यासकार के जीवन दर्शन का उपन्यास में महत्वपूर्ण स्थान होता है। आँचलिक उपन्यास भी पहले उपन्यास होता है। अत: उसमें भी जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति होना स्वाभाविक है।

भाषा शिल्प: सामान्य उपन्यासों के सामान्यता दो रूप दिखाई देते हैं-प्रथम यह भाषा; जिसमें उपन्यासकार कथा कहता है तथा घटनाओं एवं पात्रों का विश्लेषण करता है। यह तो हुई उपन्यासकार की भाषा; जो संपूर्ण उपन्यास में एक-सा है। इसे वार्तालाप की भाषा भी कहा जा सकता है। यह भाषा पात्रों के अनुसार मिलते-जुलते अनेक रूप ग्रहण करती रहती है क्योंकि उसका आधार पात्रों का विशिष्ट व्यक्तित्व होता है, किंतु इसका यह तात्पर्य नहीं कि उपन्यासकार विभिन्न पात्रों के द्वारा उपन्यासों में भाषा रूपों की प्रदर्शनी ही आयोजित कर देता है। ऐसा होता भी नहीं प्रत्येक पात्र का बोलने का अपना ढंग होता है। अपनी शैली होती है और उनकी अपनी शब्दावली होती है। इस प्रकार सामान्य भाषा में थोड़ा अंतर आ जाता है और भाषा पात्रानुकूल बन जाती है।

शैली शिल्प: साहित्य में 'शैली' शब्द का प्रयोग अपेक्षाकृत आधुनिक है। संस्कृत साहित्य शास्त्र में 'रीति' शब्द का प्रयोग होता था। आचार्य वामन ने ''काव्य का आत्मा बताया है ।''[1] शैली में लेखक के व्यक्तित्व की प्रधानता स्वीकार करने के अतिरिक्त इसे अभिव्यक्ति का विशिष्ट ढंग

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

भी कहा गया है। शैली और शिल्पविधि में भी पर्याप्त अंतर है। शिल्प-विधि का संबंध अभिव्यक्ति एवं रूप रचना की समस्त प्रक्रियाओं से है। इसलिए किसी साहित्यिक कृति की शिल्प-विधि का पता लगाने के लिए उसकी रचना में काम आनेवाली विभिन्न विधियों और रीतियों की ओर ध्यान देना पड़ता है।

आँचलिक उपन्यासों के जन्म विकास प्रवृत्तियों एवं उपलब्धियों पर विचार करने के पश्चात् यह धारणा पूर्णत: पुष्ट हो जाती है कि यह औपन्यासिक विधि हिंदी उपन्यास साहित्य की एक अभिनव देन है जिसका विकास पूर्ण वैज्ञानिक ही है; जिसकी प्रवृत्ति समयानुकूल है तथा जिसकी उपलब्धियाँ महत्वपूर्ण हैं। अपने विकास से इन उपन्यासकारों ने उपन्यास-जगत् के जिस कुहासों को दूर किया तथा गतिरोध को हटाया उसे देखते हुए इनका भविष्य अत्यंत उज्ज्वल दिखाई देता है। भारतीय जीवन एवं संस्कृति हमारे अँचलों में सुरक्षित है। जन-जातियाँ तथा आदिवासी समाज उसके प्रतीक रूप में ही विद्‌यमान है।

➢ संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. रीतिरात्मा काव्यस्य-काव्यालंकार सूत्र, 1/3/61

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

हिंदी साहित्य में आँचलिक उपन्यास का योगदान

-प्रा. पांडुरंग कामत
सरकारी उपाधि पूर्व महाविद्यालय, गोकाक।

प्रस्तावना:

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हिंदी उपन्यास साहित्य में एक नया रूप सामने आया; जिसे आलोचकों ने 'आँचलिक उपन्यास' की संज्ञा दी है। आँचल को लेकर इससे पूर्व भी अनेक उपन्यास लिखे गए हैं, किंतु इसका सूत्रपात्र करने का श्रेय फणीश्वरनाथ 'रेणु' द्वारा लिखित 'देहाती दुनिया', नागार्जुन द्वारा लिखित 'रतिनाथ की चाची' (1942), 'बलचनमा' (1952) आदि उपन्यासों को हैं। 'मैला आँचल' के रचनाकार ने स्वयं अपने उपन्यास की भूमिका में कहा है कि ''यह है मैला आँचल एक आँचलिक उपन्यास। कथानक है-पूर्णिया जिला। मैंने इसके एक हिस्से के एक गाँव को पिछड़े गाँव का प्रतीक मानकर इस उपन्यास का कथा क्षेत्र बनाया है।''

पाश्चात्य विद्वानों ने आँचलिक उपन्यासों को "Wessex novel' कहा है। इन उपन्यासों में क्षेत्रीय रंग यांनी "Regional Touch' रहता है। आँचलिक उपन्यासों में रचनाकार का ध्यान उस स्थान विशेष की संस्कृति, भाषा और बोली, रहन-सहन, रीति-रिवाज, लोकजीवन, धार्मिक विश्वास आदि के विवरण में मग्न रहता है। रचनाकार उस प्रदेश या आँचल के क्षेत्र की विशेष संस्कृति का चित्रण करता है। वह उस प्रदेश में प्रयुक्त भाषा, बोली आदि का खास कर प्रयोग करता है। ऐसे उपन्यासों में मुख्य रूप से लोकसंस्कृति, लोकजीवन, वेशभूषा, अंधविश्वास, त्यौहार-पर्व और राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक जीवन का चित्रण करता है।

आँचलिक उपन्यास के प्रधान तत्त्व पर रचनाकार जब प्रकाश डालते हैं तब स्पष्ट होता है कि रचनाकार भौगोलिक स्थिति के अंतर्गत अँचल की भौगोलिक सीमाओं का वर्णन करता है। वहाँ के सरोवर, नदियाँ, पर्वत, पहाड़, मिट्टी, बाढ़, पेड़-पौधे, झरने आदि का यथार्थ चित्रण करता है। दूसरा तत्त्व कथानक का आधार आँचल होता है। आँचल के अंतर्गत रचनाकार वहाँ की सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना को प्रकट करता है। रचनाकार की दृष्टि विशेष कर स्थानीय समस्याओं पर अधिक रहती है। उपन्यास के पात्रों की योजना आँचलिक विशेष को ध्यान में रखकर की जाती है। आँचलिक उपन्यास का तीसरा महत्वपूर्ण तत्त्व है-लोकसंस्कृति का निरूपन करना। इसमें लेखक विशेष कर आँचल की लोकसंस्कृति का विस्तृत वर्णन करता हुआ दिखाई देता है। लोक संस्कृति के अंतर्गत आँचल विशेष के रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास, परंपराएँ,

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

रहन-सहन, रूढ़ियाँ, मेले-पर्व, वेशभूषा, त्यौहार, लोकगीत, मनोरंजन के साधन, वहाँ की विशेष और गौण कलाएँ आदि का विस्तृत या संक्षेप में निरूपण करता है।

आँचलिक उपन्यास का चौथा महत्वपूर्ण तत्त्व है-भाषा और बोली। हर प्रदेश, क्षेत्र की अपनी बोली तथा भाषा होती है। इन उपन्यासों में विशेष कर आँचलिक शब्दावली का प्रयोग एवं संवाद देखने को मिलता है। आँचलिक उपन्यास में क्षेत्र विशेष में प्रयुक्त मुहावरे, लोकोक्तियाँ, लोकगीत और संस्कारिक शब्द का दर्शन होता है। आँचलिक उपन्यास का पाँचवा महत्वपूर्ण तत्त्व है-आँचल की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक स्थिति का वर्णन करना। जब रचनाकार अपनी रचना का निर्माण करता है तो वह उस कालखंड की स्थितियों का वर्णन अपने पात्रों के माध्यम से करता है।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

हिंदी के आँचलिक उपन्यास

-प्रा. एस्. के. खोत

चंद्राबाई शांताप्पा शेंडूरे कॉलेज, हुपरी।

प्रस्तावना:

यह सच है कि बदलते काल में ही आँचलिक उपन्यास का सृजन हो रहा है। यह भी हमें मानना पड़ेगा कि आज के युग में आँचलिक उपन्यास का आशातीत विकास हुआ है। भारत वर्ष में विभिन्न अँचल है। प्रत्येक अँचल की अपनी-अपनी विशेषताएँ होती हैं। हर अँचल की विभिन्न समस्याएँ तथा जीवन पद्धति होती है। साथ ही साथ प्रत्येक अँचल की अपनी-अपनी सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आर्थिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक पृष्ठभूमि होती है। हिंदी का प्रथम आँचलिक उपन्यास का निर्धारण करना सहज कार्य नहीं है, किंतु यह सत्य है कि कतिपय समीक्षक फणीश्वरनाथ रेणु लिखित 'मैला आँचल' को ही हिंदी का प्रथम उपन्यास ही स्वीकार करते हैं। बिहार प्रांत के पूर्णिया जिले के मेरीगंज ग्राम की पृष्ठभूमि पर लिखा गया उपन्यास 'मैला आँचल' है। इस उपन्यास में संस्कृति, राजनीतिक परिवेश, अफसरों की धूर्तता तथा मठ-महतों के चरित्रिक अध:पतन का सही चित्रण किया गया है।

फणीश्वरनाथ रेणु का दूसरा उपन्यास 'परती परीकथा' में परानपुर के लोगों की प्रदर्शनप्रियता, संकुचित प्रवृत्ति तथा अनभिज्ञता का विरला सम्मिश्रण देखने को मिलता है। इस उपन्यास में लैंड सेटिलमेंट सर्वे तथा कोशी प्रोजेक्ट की घटनाओं की योजना द्वारा ग्रामवासियों की मनोवृत्ति का सही चित्रण किया गया है। सन् 1954 ई. में नागार्जुन लिखित 'बाबा बटेसरनाथ' उपन्यास किसान और जमींदार के संघर्ष का सही वर्णन करने में कामयाब रहा है। इस उपन्यास में कथावाचक का काम बटेसरनाथ गाँव का विशाल बरगद करता है; जो सदियों से अपनी सुशीलतम छाया का आश्रय प्रदान करता आया है। इस उपन्यास में जमींदारों के अत्याचार, पुराने लोगों का पहनावा, कृषकों का शोषण और राष्ट्रीय आंदोलन आदि बातों का वर्णन किया गया है।

सन् 1965 ई. में लिखित 'उग्रतारा' शीर्षक उपन्यास में बालविधवा उग्रतारा फँसकर अधेड़ उम्र के आदमी के साथ विवाह करती है। उसके उपरांत मौका मिलते ही अपने प्रेमी के साथ भाग जाती है। आधुनिक विचारों वाली भाभी उग्रतारा का विवाह उनके प्रेमी के साथ करवाती है। भैरव प्रसाद गुप्त के सन् 1951 ई. में लिखित 'सती मैया का चौरा' तथा सन् 1958

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

ई. में लिखित 'धरती' उपन्यास में आँचलिकता की कुछ विशेषताएँ स्पष्ट रूप में देखने को मिलती हैं। इन दो उपन्यासों में गाँव का जीवन विस्तार के साथ वर्णित किया है। बलभद्र ठाकुर के कतिपय उपन्यास हिमालय के लोकजीवन पर लिखे गए हैं।

उपन्यासकार रामदरश मिश्र जी ने 'जल टूटता हुआ' और 'पानी के प्राचीर' उपन्यासों में स्वतंत्रता पूर्व की विभिन्न समस्याओं और सामाजिक-आर्थिक स्थितियों का यथावत वर्णन 'पानी के प्राचीर' उपन्यास में किया है। 'जल टूटता हुआ' उपन्यास में आजादी के बाद की ग्रामीण स्थिति अंकित की है। रामदरश मिश्र जी ने गाँव का चित्रण करते समय दरिद्रता और अज्ञान का सच्चा रूप समाज के सम्मुख रख दिया है। साथ-ही-साथ सामाजिक एवं राजनीतिक तनावों, पारिवारिक कलह और संघर्षों का विस्तार के साथ वर्णन किया है। रांगेय राघव कृत 'कब तक पुकारूँ' नामक उपन्यास में राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्र की करनट जाति का जीवन चित्रित है। ''करनट जन जाति के जीवन पर आधारित आँचलिक उपन्यास 'कब तक पुकारूँ' में पुलिस द्वारा करनटों एवं उनकी महिलाओं के शोषण के अनेकों चित्रण मिलते हैं।''[1] लोकसाहित्य प्रेमी और उत्साही यात्री देवेंद्र सत्यार्थी के 'ब्रह्मपुत्र' नामक उपन्यास में असमी या असमिया संस्कृति का विवेचन-विश्लेषण किया गया है। देवेंद्र सत्यार्थी ने 'रथ के पहिये' उपन्यास में प्राकृतिक सभ्यता का नागरी सभ्यता से मेलजोल दिखाया है। रोमानी तथा आदर्शवादी दृष्टि का सही परिचय देवेंद्र सत्यार्थी ने अपने 'रथ के पहिये' उपन्यास में किया है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि गाँवों तथा कस्बों की स्थितियों का दर्पण आँचलिक उपन्यास है। मनुष्य की विभिन्न प्रवृत्तियों का उल्लेख आँचलिक उपन्यासों में मिलता है। आज के युग में आँचलिक उपन्यास की विशिष्ट महत्ता है।

- **संदर्भ ग्रंथ सूची:**

1. विमल शंकर नागर-हिंदी के आँचलिक उपन्यास: सामाजिक, सांस्कृतिक संदर्भ, पृ.-213

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

हिंदी के आँचलिक उपन्यास और उनका महत्व

-प्रा. विकास विधाते

अण्णासाहेब डांगे कॉलेज, हातकणंगले।

प्रस्तावना:

साहित्य में समाज का हू-ब-हू चित्रण किया जाता है। समाज का प्रतिबिंब हमें साहित्य में देखने को मिलता है। व्यक्तियों के समूह को सामान्यत: समाज कहा जाता है। आँचलिक उपन्यास मानव समाज एवं संस्कृति को अभिव्यक्ति प्रदान करता है। उपन्यासकार अपने उपन्यास में भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक अंगों का व्यापक चित्रांकन करता है। नदी, तालाब, सागर, खेती, वन, मैदान, रेगिस्तान, झुग्गी-झोपड़ी आदि का वर्णन आँचलिक उपन्यासों में किया जाता है। आँचलिक उपन्यास का समाज जीवन से अटूट रिश्ता जुड़ा होता है।

आँचलिक उपन्यास का उद्भव और विकास: आँचलिक उपन्यास हिंदी साहित्य के लिए एक नवीनतम प्रयोग है, परंतु हिंदी उपन्यासों में आँचलिकता के अंकुर बहुत पहले से विद्यमान हैं। कुछ दिनों में उपन्यासों की यह आँचलिकता नए परिवेश के रूप में प्रस्तुत हुई है। यह आंदोलन विश्व साहित्य से संबंधित रहा। पाश्चिमात्य देशों में योरोपीय उपन्यासकार मेरिया एजवर्थ, सर वाल्टर स्काट, सर थॉमस हार्डी के आँचलिक उपन्यासों के साथ अमेरिका के उपन्यासकारों में भी एक नई चेतना का आविष्कार हुआ और अमेरिका के उपन्यासकारों ने अपने आँचलिक जीवन को अपनाया। मार्कट्वेन, ऑनरेस्ट हेतिग्वे ने अपने उपन्यासों में आँचलिकता को स्थान दिया है। आँचलिकता का अर्थ बहुत से लोगों ने स्थानीय रंग से लिया है, किंतु यह भ्रम है। अँचल यानी एक भूखंड विशेष समग्र जीवन; जो स्थानीय रंगत से भिन्न प्रकार के जीवन लक्षण का द्योतक है। धरती के विभिन्न भूखंडों में प्रकृति के साधन भिन्न-भिन्न होते हैं।

आँचलिक उपन्यास के वर्गीकरण का आधार: आँचलिक उपन्यास में वर्गीकरण की सबसे बड़ी कठिनाई होती है कि आँचलिक उपन्यास का लक्ष्य अँचल की समग्रता की धारणा को मानकर उपन्यासकारों ने उसके ठीक अर्थ को अपनी कृतियों में ग्रहण नहीं किया। सीमाबद्ध क्षेत्रीय संस्कृति के जिस निरूपण का ग्रहण आँचलिक उपन्यास लेकर चलता है उसके लिए वह जिस राह से गुजरता है उसमें उपन्यासकार वस्तु पर बल देता है।

आँचलिकता के प्रकार: हिंदी उपन्यास विधा में प्रेमचंद युग में परिवर्तन की नई हवा बहने लगी है। इन परिवर्तनों में एक बिल्कुल नया परिवर्तन आँचलिक उपन्यास विधा के रूप में हमारे सामने

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

प्रस्तुत हुआ है। किसी विशिष्ट अँचल या भू-भाग को नायक बनाकर उस अँचल का चित्रण करने की एक नई प्रवृत्ति उपन्यास में पनपी; जो अत्यंत लोकप्रिय भी हुई। इस प्रवृत्ति के कारण इसमें सुदूर बसे विद्वान, वैज्ञानिक हवा से अछूते रहे भूभाग का चित्रण होने लगा, जिसके द्वारा पिछड़े आदिम और दलित लोगों के जीवन चरित्र के विशिष्ट पहलुओं के दर्शन होने लगे। भारत की भौगोलिक और प्राकृतिक विभिन्नता के कारण आँचलिकता के कई भेद किए जा सकते हैं। मैदानी इलाकों, पर्वतीय उपत्यकाओं, भू-भागों, औद्योगिक महानगरों के निकट कस्बों में बसी बस्तियों, मुहल्लों, विशेष टोलियों, मजदूरों की बस्तियों, अवैध धंधों में लिप्त होकर आजीविका करने वाली जातियों की बस्तियाँ भी आँचलिकता की अवधारणा को गहराई से समझाने के लिए न केवल किसी स्थान विशेष के भौगोलिक परिवेश को ही देखना पर्याप्त होगा। उसके सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, अस्मिता को संपूर्ण ईकाई के रूप में अंगीकार करना होगा।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि सामाजिक समता का तब तक महत्त्व नहीं जब तक देश में एकता और बंधुता नहीं हो। समता वह पुनीत सद्गुण है; जो देशवासियों के मन में बंधुभाव उत्पन्न कर सकता है। जिस राष्ट्र में बंधुभाव है, वहाँ अक्षय सुख-समृद्धि निवास करती है; जिन लोगों का आपस में प्रेम है। उन्हें कोई भी दूसरा राष्ट्र अपना दास नहीं बना सकता; यह कथन आँचलिक उपन्यासों के बारे में यथार्थ लगता है। इन सभी गुणों का प्रचार-प्रसार आँचलिक उपन्यास करते हैं।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

'मैला आँचल' में युग चेतना

-प्रा. रविदास पाडवी

महावीर महाविद्यालय, कोल्हापुर।

प्रस्तावना:

उपन्यास मानव जीवन के समानांतर चलने वाली एक गद्य विधा है। स्वातंत्र्योत्तर काल में उपन्यास विधा विविध विचार प्रवाह में प्रवाहित होकर अलग-अलग विषयों से सटकर उभर रही थीं। इसमें आँचलिक उपन्यास नए नाम से नई धारा गाँव, कस्बे, विभिन्न आँचल से जुड़कर उपन्यासकारों के सामने आने लगी। इस विषयों से संबंधित 'फणीश्वरनाथ' रेणु का 'मैला आँचल' उपन्यास सन् 1954 ई. में प्रकाशित हुआ। 'मैला आँचल' का कथानक देश के सर्वाधिक पिछड़े राज्य बिहार के पूर्णिया जिले के मेरीगंज गाँव से जुड़ा है; जो भौतिक प्रगति से पिछड़ा हुआ है। सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, राजनैतिक, गरीबी, कृषक का शोषण, जमींदार आदि से मेरीगंज अँचल बेदखल है। 'रेणु' की तमन्ना है कि गाँव के गाँव उस पर आ जाए। 'मैला आँचल' में चुनावनीति, दलबंदी, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएँ और सामंती संस्कारों का खुलासा हुआ है। 'रेणु' का कथन है कि 'इसमें फूल भी है, शूल भी, धूल भी है, गुलाब भी, कीचड़ भी है। चंदन भी है, सुंदरता भी है, कुरूपता भी। किसी से दामन बचाकर निकल नहीं पाया।'

मेरीगंज की मानसिकता है कि अछूते अँचल में खुल रहे मलेरिया सेंटर और डॉ. प्रशांत के आने की सूचना से अँचल के लोग आपस में तरह-तरह की बातें करने लगते हैं। गाँव में डॉ. प्रशांत मलेरिया और चरखा सेंटर खुलवाता है। तो गाँव की जड़ता टूट जाती है। डॉ. प्रशांत के आने से पूर्व गाँव में अंधविश्वास की बातें उड़ाई जाती हैं। बाद में उनकी सेवाओं से प्रभावित होकर अँचल के लोग उन्हें देवता मानते हैं। गाँव में चरखा सेंटर में शहर से शिक्षिका मंगला देवी आती है। यह सेंटर ग्राम्य नारियों का आर्थिक स्वावलंबन की दिशा प्रशस्त होने का संकेत है।

रेणु ने मेरीगंज अँचल में सामाजिक और राजनैतिक चेतना का बखूबी चित्रण किया है। 'मैला आँचल' में एक ओर समाजसेवी राजनीतिज्ञों के भ्रष्ट चरित्रों का उद्घाटन होता है तो दूसरी ओर शोषित जनता की पक्षधरता को अभिव्यक्ति मिलती है। उपन्यास में गांधीवादी आदर्श प्रेरित बालदेव से काँग्रेस समाजसेवियों का दल हिंसावाद न करने के लिए मेरीगंज अँचल के लोगों को प्रेरणा देता है। वह हिंसात्मक आंदोलन न करने की सलाह भी देता है। मतलब 'मैला आँचल' में गांधीवादी विचार दर्शन मिलता है। 'भारत माता' उसे हमेशा जोर-जोर से रोती हुई दिखलाई पड़ती

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

है, लेकिन स्वतंत्रता के बाद बालदेव ही लोगों का राष्ट्रभक्ति के माध्यम से अँचल के लोगों का शोषण करता है। फणीश्वरनाथ रेणु ने अपने उपन्यास में भ्रष्ट राजनीति का चित्रण किया है। पर यह सच है कि गांधी जी ने श्रमिक किसानों में आत्मविश्वास की भावना विकसित की थी। इस अर्थ में उपन्यास में गांधी जी किसानों के आदर्श रहे हैं। बालदेव जैसे स्वार्थी, अवसरवादी नेता मात्र अपना स्वार्थ सिद्धि की तिकड़म में लगे हुए हैं। प्रगति की राह में रोडे अटकाने का काम मुखौटाधारी सेवकों द्वारा बड़े व्यवस्थित ढंग से किया गया है।

संक्षेप में लेखक का उद्देश्य हर अँचल के एक पहलू को खोलना रहा है, जहाँ भ्रष्टाचार अनैतिक है। लेखक पाठकों को कृषकों और मजदूरों की दयनीय हालत, उनकी गरीबी और बेकारी को अवगत करता है। इनमें लेखक ने स्त्री-उत्पीड़न, शोषण, अत्याचार, राजनैतिक छल-कपट, रीति-रिवाज, ग्रामीण-संस्कृति, स्वार्थसिद्धि, सामाजिक असुरक्षा आदि का यथार्थ निरूपण किया है।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

हिंदी के आँचलिक उपन्यासों में लोकसंस्कृति

-प्रा. माधुरी पाटिल
कर्मवीर भाऊराव पाटील, उरुण

प्रस्तावना:

आँचल देश का एक खंड है, जिसकी अपनी विशिष्टता होती है। जीवन की गति, विशिष्ट धारा, विशिष्ट रूप, रंग एवं प्रकृति से युक्त होती है। इसकी अपनी अलग पहचान और अलग संदर्भ होते हैं। आधुनिक सभ्यता में संस्कृति की परिभाषा को बदला है, किंतु आज भी आँचलिक खंडों में भारत का असली रूप देखने को मिलेगा। उनमें आज भी गलत रूढ़ि, परंपराएँ, अंधविश्वास जीवित हैं। उनकी आर्थिक व्यवस्था व जीवन शैली पर मध्यकालीन युग के विश्वासों की छाया का गहरा प्रभाव रहा है। हमारे देश की लोकसंस्कृति को यदि मूल प्रकृति एवं मूल रूप में देखना है तो आँचलिक उपन्यासों में उसका सजीव एवं हृदयग्राही चित्रण पाया जाता है।

आँचलिक उपन्यासों में स्थानीय रंग, रीति-रिवाज, वातावरण, संस्कृति और भाषा के माध्यम से यथार्थता का चित्रण मिलता है। सच तो यह है कि आँचलिक उपन्यासकारों ने भारतीय मनुष्य को भारतीय रूप, रंग, रेखा, पहचान आदि को भारतीय अस्मिता के फ्रेम में फिट कर दिया है। 19 वीं शती के प्रारंभ में ही आँचलिक उपन्यासों का निर्माण हो चुका था। सन् 1980 के पश्चात् हिंदी आँचलिक उपन्यासों ने करवट बदली और देश के एक आँचल की जीवन शैली को, लोकसंस्कृति को अत्यधिक सहज, सरल, किंतु यथार्थ ढंग से परिचित कराने का प्रयास किया गया है। इन आँचलिक उपन्यासों में सामान्य मनुष्य को चित्रित किया जाता है। वह चरवाहा हो या मछुआरा, वह किसान हो या मजदूर। कथा का क्षेत्र नगर से हटकर ग्रामों, घाटियों, पहाड़ों, के आस-पास निवास करने वाले साधारण मनुष्य के इर्द-गिर्द ही घूमता है। सामान्य मानव का कार्य क्षेत्र प्रकृति का उन्मुक्त प्रांगण होता है तथा प्रकृति उसके संपूर्ण जीवन को नियंत्रित एवं निर्देशित करती है। इसी कारण प्रकृति एवं वातावरण की छाप आँचलिकता की प्रमुख विशेषता बन जाती है। जहाँ तक भाषा का प्रश्न है, उसमें भी कृत्रिमता को त्यागकर स्वाभाविकता का आग्रह रहता है।

मणि मधुकर का लघु आँचलिक उपन्यास 'पिंजरे में पन्ना' (1981) राजस्थान के गाड़िया लुहार और कलाकारों के लोक जीवन और लोककला पर केंद्रित है। परिवर्तित परिवेश से

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

यह जीवन पूर्णत: बेखबर है। इसमें गाड़िया लुहार, ख्याल की नायिका पन्ना और नंदे रम्या की लोककला की खोज इन तीन कथाओं के द्‌वारा रेगिस्तान का संघर्षमय जीवन और लोकसंस्कृति को वाणी दी है। उदा. आनंद सोनटक्के नंदे और रम्या की खोज में रेगिस्तान तक पहुँचता है तब-''जड़ों की खोज शुरू हुई। उस दुनिया की जड़ें और अपनी जड़ें। दोनों में एक जुड़ाव था। अंदर की मिट्‌ठी उन्हें जोड़ रही थी।''[1] भारतीय लोकसंस्कृति का यथार्थ रूप हमें ग्राम जीवन में ही प्राप्त होता है। ''भारतीय कृषक का समस्त जीवन ग्रामीण-संस्कृति से अनुप्रणित है। ग्रामीण कलाएँ, पर्व, त्यौहार, संस्कार, रूढ़ियाँ, प्रथाएँ, रीति-रिवाज, खेलकूद आदि विभिन्न अवयवों के योग से संस्कृति बनती है।''[2] फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' में मेरीगंज गाँव में नए-पुराने विचारों में टकराहट हो रही है। शहरी खानपान एवं फैशनी वेशभूषा का प्रचार गाँव में हो रहा है। गाँव की फुलियाँ बालों में सुगंधित तेल लगाती है। वासुदेव ने भी 'बाटा कंपनी का जूता खरीदा है-चोबीस रुपये में काला चश्मा लगाकर पैजामा, कुर्ता पहनकर, जूता मच-मचाकर चलते समय थोड़ा नसा जैसा लगता है।''[3] गाँव में रेडियो, ट्रैक्टर, पानी का मशीन आ गया है। इस प्रकार शहरी संस्कृति और सभ्यता का संक्रमण गाँव में विविध स्तरों पर हो रहा है। रेणु के 'मैला आँचल' में कृषक जीवन में व्याप्त लोक तत्त्व का अद्‌भुत प्रयोग है। इस गीतों में तत्कालीन युग बोध की अभिव्यक्ति हो रही है; जैसे-''होली है। कोई बुरा न माने, होली है।''[4]

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि लोकसंस्कृति भारतीय समाज में पुनर्जागरण के प्रश्नों को सुलझाने एवं समझने में सहायता करती है। औपनिवेसिक काल में नागर संस्कृति की छबि हमें लोकगीतों एवं लोककवियों की रचनाओं में प्राप्त होती है। समय की सूक्ष्म से सूक्ष्मतर परिवर्तनशीलता की गूँज लोकसंस्कृति में है।

- **संदर्भ ग्रंथ सूची:**

1. मणि मधुकर-पिंजरे में पन्ना, पृ.-138
2. डॉ. गोविंद रजनीश-हिंदी के आँचलिक उपन्यास, पृ.-55
3. फणीश्वरनाथ रेणु-मैला आँचल, पृ.-187
4. वही, पृ.-102

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

आँचलिक उपन्यासों की विशेषताएँ

-प्रा. हीरामण टोंगारे
राजे रामराव महाविद्यालय, जत।

प्रस्तावना:

हिंदी साहित्य के क्षेत्र में उपन्यास एक महत्वपूर्ण विधा है और उसके अंतर्गत विकसित आँचलिकता एक नविनतम प्रवृत्ति के रूप में अग्रगण्य है। हिंदी उपन्यासों का जो अल्पकाल में विकास हुआ वह उसके विविधात्मक स्वरूप का बोध कराने में समर्थ है। हिंदी में आँचलिक उपन्यासों का व्यवस्थित स्वरूप सन् 1950 के पश्चात् स्पष्ट हुआ है और अनेक उत्कृष्ट औपन्यासिक उपलब्धियाँ सामने आई हैं। इनकी प्रमुख विशेषता यह हैं कि इनमें किसी विशिष्ट अँचल का जीवन समग्र रूपात्मक विशेषताओं के साथ उपस्थित होता है। आँचलिक प्रवृत्ति की उद्भावना प्रेमचंद के पूर्व ही हो चुकी थी, परंतु इसका समुचित विकास प्रेमचंदोत्तर युग में और विशेष रूप से स्वातंत्र्योत्तर युग में ही हो चुका है।

ग्रामीण वातावरण एवं पिछड़े हुए लोगों का जीवन: 'मैला आँचल', 'परती परिकथा', 'पानी के प्राचीर' जैसे उपन्यास ग्रामीण परिसर एवं वातावरण को लेकर लिखे गए हैं। 'कब तक पुकारूँ' में राजस्थान के करनट एवं खानाबदोश समाज का चित्रण है। इन पिछड़े हुए समाजों में नैतिकता के बंधन बहुत शिथिल होते हैं। इन उपन्यासों में भयानक दारिद्रता, शिक्षा एवं सुसंस्कारों का अभाव, अन्य वर्गों द्वारा शोषण, आपसी संघर्ष, विवशता और पिछड़ापन प्रकट हुआ है।

विस्मय कौतुहल की भावना: 'कब तक पुकारूँ' और 'सागर लहरे और मनुष्य' आदि उपन्यास इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं। कई विद्वान समीक्षकों की दृष्टि से आँचलिक उपन्यासों की लोकप्रियता का यह एक महत्वपूर्ण कारण है। तथाकथित घिसे-पीटे नागरी जीवन के चित्रण से पाठक ऊब गए थे और उन्हें कुछ नए, अपरिचित एवं लोक विलक्षण जन-जीवन को देखने-सुनने की इच्छा थी, वह आँचलिक उपन्यासों के कारण पूर्ण हुई।

जातीयता: अधिकांश आँचलिक उपन्यासों में किसी जाति-विशेष का जन-जीवन चित्रित किया गया है। 'कब तक पुकारूँ' में करनटों, बलचनमा में किसानों तथा मजदूरों, 'वरूण के बेटे' एवं 'सागर लहरे और मनुष्य' में मछुवारों आदि का जन-जीवन चित्रित किया गया हैं। गाँव में अनेक वर्गों, जमातों एवं टोलियों में लोग रहते हैं।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

प्रगाढ़ स्थानीय रंग: आँचलिक उपन्यासों में लेखक किसी विशिष्ट स्थान या अँचल के जन-जीवन का चित्रण उसकी विशिष्टता में करता है। स्थानीय रंग लाने के लिए अँचल विशेष के जन-जीवन की परंपराओं, वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान, बोली और वहाँ के प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया जाता है।

लेखक का समाजशास्त्रीय एवं सौंदर्य दृष्टिकोण: समाज में किसी भी व्यक्ति की अच्छाइयाँ और बुराइयों की समीक्षा करने से पहले इस सामाजिक परिस्थिति का अध्ययन करना अनिवार्य बन जाता है। आँचलिक उपन्यास इस अध्ययन में सहायक हो जाता है। हमारा दृष्टिकोण व्यापक एवं उदात्त बन जाता है। हम पाप से घृणा करने लगते हैं; पापी से नहीं। आँचलिक उपन्यासों से हमारे तथाकथित प्रतिकूल पूर्वग्रह दूर होते हैं और मनुष्य को परखने का हमारा दृष्टिकोण सच्चे अर्थ में मानवीय, व्यापक एवं संवेदनक्षम बन जाता है।

राष्ट्रीय जागरण की भावना एवं जन-जागरण की नई दिशा: स्वातंत्र्य प्राप्ति के बाद संपूर्ण भारत जन-जीवन में राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षिक, सांस्कृतिक स्थित्यंतर हो रहे हैं। लोकतंत्र के कारण प्रत्येक प्रौढ़ व्यक्ति को मताधिकार प्राप्त होने के कारण राजनीतिक चुनाव को आत्याधिक महत्व प्राप्त हुआ है। इस चुनाव में सफल होने के लिए अच्छा-बुरा प्रचार होने लगा है। भारत धर्मनिर्विशेष राष्ट्र होने के बावजूद धर्म, जाति या भाषिक स्तर पर प्रचार-प्रसार हो रहा है। राजनीतिक क्षेत्र सत्वहीन तथा स्वार्थी व्यक्तियों से घिरा जा रहा है। इसके कारण कहीं-कहीं मारपीट, खून-खराबा आदि हिंसक कृत्य भी हो रहे हैं।

लोकसाहित्य: लोकसाहित्य साधारणत: पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है; जैसे- लोकगीत, लोकगाथा, लोककथा, लोकनाट्य, लोकसुभाषित आदि। लोकसुभाषी के अंतर्गत मुहावरे, लोकक्तियाँ, सुक्तियाँ, बच्चों के गीत, पालने के गीत, खेत के गीत आदि का अंतर्भाव किया जाता है। सामान्यत: लोक साहित्य सहज, सरल एवं स्वाभाविक होता है। वह जनता के भावों जीवन की प्रामाणिक एवं सहज अभिव्यक्ति है। आँचलिक उपन्यासों में लोकजीवन एवं संस्कृति का चित्रण करने के उद्देश्य से जिस प्रकार के लोक साहित्य का उपयोग किया गया है वह अति सार्थक एवं समर्पक है। 'मैला आँचल', 'परती: परिकथा', 'वरूण के बेटे', 'देहाती दुनिया', 'दुखमोचन', 'सागर लहरें और मनुष्य' आदि हिंदी आँचलिक उपन्यासों में पर्याप्त मात्रा में लोकसाहित्य के द्वारा स्थानीय लोक संस्कृति का चित्रण किया हुआ दिखाई देता है।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि आँचलिक उपन्यासों में अधिकांश मात्रा में देहाती वातावरण या पिछड़े हुए लोगों का चित्रण किया गया है। इसमें नागरी संस्था के साथ-साथ अलग-अलग निजी संस्कृति भी दिखाई गई है। उसी के साथ हर एक उपन्यास में पाठकों के मन में कौतुहल की भावना जग जाती है। एक प्रकार से नाट्यमयता का चित्रण किया जाता है और जातीयता को भी बड़ा महत्व दिया जाता है क्योंकि एक जाति की विशिष्टता का यहाँ महत्व विशद किया जाता है। अँचल की विशिष्टता के लिए लेखक स्थानीय रंग भरने की कोशिश करता है; जिसमें सभी प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया जाता है और उसका विशेष महत्व है।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

'मैला आँचल' का महत्व

-प्रा. सुचिता संतोष भोसले

कला, वाणिज्य व विज्ञान महाविद्यालय, आसुर्ले-पोर्ले।

प्रस्तावना:

फणीश्वरनाथ रेणु जी की कृतियों में अपने निजी जीवन, ऐतिहासिक काल और अपने अँचल के परिवेश का समग्र रूप मिलता है; जिसमें उनके व्यक्तित्व और इतिहास का समन्वय हुआ है। उनकी महान कृतियाँ हैं-'मैला आँचल' और 'परती परिकथा'। लेखक रेणु अपने लेखकीय जीवन के प्रारंभ काल से ही स्वाधीनता एवं समतावादी आंदोलनों से सक्रिय रूप से जुड़े रहें। इसमें उन्होंने अपनी प्रतिबद्धताओं को कार्यरूप में परिणत करने के लिए सक्रिय हिस्सा लिया। इस क्रम में उन्होंने जीवन का सर्वांगीण अवलोकन निकट से किया है। उन्होंने अपनी रचना सामग्री का संग्रह किया, जिनकी अभिव्यक्ति विशेष रूप से 'मैला आँचल' तथा अन्य रचनाओं में हुई हैं।

'अँचल' का सामान्य अर्थ है-''अँचल विशेष की जीवन पद्धति, रीति-रिवाज, लोकरीति और लोकरूढ़ि, बोलचाल अर्थात् अँचल की संपूर्ण संस्कृति की जो स्थानीय विशिष्टताएँ हैं उन्हीं की अभिव्यक्ति पर आँचलिक उपन्यास आधारित होते हैं ।''[1] फणीश्वरनाथ 'रेणु' के 'मैला आँचल' उपन्यास में मेरीगंज गाँव के प्राकृतिक, धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, राजकीय वातावरण के द्वारा उस अँचल का समग्र चित्र प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में अँचल जीवन के संपूर्ण चित्रण के साथ-साथ आँचलिक उपन्यास का तथा मानवतावादी दृष्टिकोण भी परिलक्षित होता है।

आँचलिक उपन्यास का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होता है कि अँचल जीवन की विशिष्टता को स्पष्ट करना और अँचल का समग्रता से चित्रण करना। 'मैला आँचल' में रेणु जी ने मेरीगंज गाँव की विशिष्टता को स्पष्ट करते हुए उस अँचल का समग्र चित्रण किया है। आँचलिक उपन्यास की दृष्टि यथार्थवादी होती है। साथ ही उसमें कभी-कभी आदर्श की झलक भी दिखाई देती है। रेणु जी ने प्रस्तुत उपन्यास में इस प्रकार की दृष्टि को अपनाया है। उन्होंने कहा है; जैसे-''इसमें फूल भी है, शूल भी, धूल भी है, गुलाल भी, कीचड़ भी है, चंदन भी, सुंदरता भी है, कुरूपता भी, मैं किसी से भी दामन बचाकर निकल नहीं पाया।''[2] किसी गाँव या कस्बे को आधार बनाकर

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

आँचलिक उपन्यासकार समाज जीवन का चित्रण करता है। रेणु ने आँचलिक उपन्यास की इस विशेषता की ओर उपन्यास की भूमिका में संकेत कर दिया है। 'मैला आँचल' उपन्यास में विशेष स्थान का यथार्थ चित्रण, कथा की योजना, प्रेम तत्व, कल्पना का स्थान, आँचलिक जीवन की समस्याएँ, समाहार की विशिष्टता आदि के आधार पर कथावस्तु का निर्वाह किया गया है।

रेणु ने अपने उपन्यास में सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों से जुड़े जिन सवालों को उठाया हैं, वे हैं पारिवारिक संबंधों के बदलते पैमाने, जाति, संस्कार और बंधनों में परिवर्तन, सेक्स और नैतिकता की अवधारणा के पारस्परिक संबंध, स्त्री-पुरुष संबंधों के नए आयाम आदि का चित्रण किया है। इन सभी पहलुओं से जुड़ी व्यक्ति-व्यक्ति, व्यक्ति-समूह और समूह-समूह के बीच अंत:क्रिया से उत्पन्न सहयोग, संघर्ष और अंतर्द्वंद्व की प्रक्रियाएँ ये सारी हैं 'मैला आँचल' की विषयवस्तु। प्रस्तुत उपन्यास में सभी ग्रामीण चरित्रों की ग्रामीण हिंदी भाषा पर गौर करने पर प्रत्येक पात्र की सामाजिक-सांस्कृतिक हैसियत का भी स्पष्ट पता चलता है। रेणु ने उपन्यास में गीतों, लोक दृश्यों, लोक ध्वनियों को चित्रवत् प्रस्तुत किया है; जैसे मैथिली लोकगीत-

> ''माइगे, हम ना बियाहेब अपन गौरा के
> जो बुढ़ावा होइत जमाय गे माई।''[3]

संक्षेप में रेणु ने लोकगीतों के द्वारा विविध आयामों को प्रस्तुत किया है। साथ ही उसके भाव तथा समुचित परंपरा का चित्रण भी गीतों एवं गाथाओं के द्वारा किया गया है। रेणु की एक अनोखी विशेषता है कि उन्होंने पारंपरिक लोक साहित्य के भाव तथा संवेदना को समकालीन उपन्यास विधा से समन्वित कर एक नए औपन्यासिक फार्म को प्रस्तुत किया है। साथ ही गीतों द्वारा जाति व्यवस्था के विरोधाभास, पारंपरिक एवं धार्मिक रीति-रिवाज और अंधविश्वास से उत्पन्न चारित्रिक पाखंड को दिखाया गया है। इस तरह रेणु ने गीत के प्रयोग द्वारा भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक परंपरा से उत्पन्न पाखंडों को दिखाया गया है। इस उपन्यास के गीतों और दंत कथाओं के उल्लेख द्वारा रेणु ने ग्रामीण लोगों के मिथक तथा काल्पनिक सपनों को भी प्रकट किया है। इस संदर्भ में चरित्रों के अनुभवों को सामने रखा है; ताकि पाठक उनके मर्म तक पहुँच जाए।

निष्कर्षत: रेणु जी ने ग्रामीण कथा, नाटक-नौटंकी, ग्रामीण कलात्मक शैलियों को भी आधुनिक औपन्यासिक विधा से समन्वित कर नई संरचना की सृष्टि की है। इस संरचना द्वारा पारंपरिक-आधुनिक मूल्यों, ग्रामीण-शहरी मूल्यों और जीवन दृष्टियों के बीच सेतु स्थापित करने

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

का प्रयास किया है। अत: 'मैला आँचल' एक ऐसा उपन्यास है जो एक अँचल की अभिव्यक्ति के माध्यम से संपूर्ण समाज, सभ्यता तथा संस्कृति के बारे में सोचने के लिए मजबूर करता है।

➢ **संदर्भ ग्रंथ सूची:**

1) फणीश्वरनाथ रेणु-फणीश्वरनाथ रेणु: व्यक्तित्व, काल और कृतियाँ, गोपीकृष्ण प्रसाद, राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2138, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण: 1993, पृ.-120

2) फणीश्वरनाथ रेणु-मैला आँचल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, आँठवां संस्करण: 1992, प्राक्कथन से उद्धृत।

3) वही, पृ.-56

'बलचनमा' आँचलिक उपन्यास में ग्राम जीवन की समस्याएँ

-प्रा. नितिन विठ्ठल पाटिल
विठ्ठलराव पाटिल महाविद्यालय, कळे।

प्रस्तावना:

हिंदी उपन्यास साहित्य में नागार्जुन का अपना एक विशिष्ट स्थान है। ग्रामीण जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति नागार्जुन के उपन्यासों की महत्वपूर्ण विशेषता रही है। नागार्जुन द्वारा लिखित बलचनमा यह आँचलिक उपन्यास है; जो सन् 1952 ई. में प्रकाशित हुआ है। इस उपन्यास में नागार्जुन ने बिहार राज्य के दरभंगा जनपद के परिवेश का संपूर्ण चित्रण किया है। आँचलिक क्षेत्र का पूरा परिवेश, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि समस्याओं का बखूबी चित्रण इस उपन्यास में किया है। प्रस्तुत उपन्यास का नायक ग्वाला जाति का सत्रह-अठारह साल का नवयुवक है। उसके जीवन को ही नागार्जुन ने कथा का केंद्र बनाया है।

गाँवो के सामान्य लोगों की आर्थिक दुर्दशा, जमींदारों द्वारा होने वाले शोषण और अत्याचार, रीति-रिवाज, परंपराएँ, जातीयता आदि के कारण लोगों में फैली धर्मांधता तथा अंधविश्वास आदि का वर्णन 'बलचनमा' उपन्यास में मिलता है। ''नागार्जुन ने अपने उपन्यासों में जिस समाज का चित्रण किया है, वह उनका अच्छी तरह देखा-भला है और उसी समाज में रहते हुए स्वयं ने भी उस दु:ख-दर्द को झेला और भोगा है।''[1] इसी कारण ही ग्रामीण जीवन का यथार्थ वर्णन उनके उपन्यासों में मिलता है। बलचनमा दरभंगा जिले के ग्राम रामपुर का निवासी है। उसके परिवार में पिता, माँ, दादी और एक छोटी बहन है। इसी परिवार को माध्यम बनाकर उपन्यासकार ने गाँवों के गरीब किसानों की आर्थिक स्थिति का चित्रण किया है; जो आर्थिक विवशता के कारण अत्याचार सहते हुए जमींदारों की खुशामद करनी पड़ती है। बलचनमा का पिता मँझले मालिक के आम के बाग में से एक आम चुराकर लाता है। कुटिया में बैठकर आम के छिलके निकालने लगता है। यह बात मालिक को मालूम हो जाती है। हवेली में बुलाकर उसे खंभे पर रस्सी के सहारे बाँध दिया जाता है और नौकरों की सहायता से पिटाई की जाती है। उसे इतना मारा जाता है कि उसकी खाल उधेड़ दी जाती है। उसके होंठ सूख जाते हैं। उसकी हालत देखकर बलचनमा की दादी मँझले मालिक के पैर पकड़कर माफी के स्वर में रोती हुई कहती है- ''दुहाई सरकार की, मर जाएगा ललुआ छोड़ दीजिए सरकार। अब कभी ऐसा न करेगा दुहाई मालिक की। दुहाई माँ-बाप की।''[2] स्पष्ट है कि गरीब बलचनमा के बाप को भूख के कारण ही इतनी मार खानी पड़ती है। कुछ दिनों के बाद बाप को तेज बुखार आता है और इसी बुखार में वह मर जाता है। उसके क्रिया-कर्म के लिए बलचनमा की माँ और दादी मँझले मालिक से ही

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

बारह रुपये सूद पर ले लेते हैं। कोरे कागज पर अँगूठे के निशान भी दे देते हैं। इस पर सूद देते-देते बलचनमा की माँ थक जाती है, परंतु मूल ज्यों का त्यों ही रह जाता है। जमींदार लोग गाँव के गरीब किसानों और मजदूरों की असहायता का फायदा उठाते हैं, उनसे कम मजदूरी पर अधिक से अधिक काम करवाते हैं। इसका प्रभावी चित्रण इस उपन्यास में देखने को मिलता है। छोटी मालकिन गुणवता शोषक और अत्याचार स्वभाव की है। वह भादों, आसिन के महीनों में अपना अनाज बेचने के लिए निकालती है। चढ़े दाम पर अधिक से अधिक अनाज बेच देती है। अनाज कभी-कभी कुछ शर्त रखकर भी सामान्य लोगों को देती है, लेकिन लेते वक्त लोगों को फंसाकर ज्यादा अनाज प्राप्त करती है।

बाप की मृत्यु के पश्चात् बलचनमा के घर की हालात और भी बिगड़ जाती है। दादी छोटे मालकिन के यहाँ बलचनमा के लिए चरवाहे का काम माँगती है, उनसे मिन्नते करती है। इतना होने पर भी मालकिन जब राजी नहीं होती तब तो पैर पकड़कर कहने लगती है-''नहीं मालिकाईन ऐसी बात न कहिए। मेरा बालचन मुट्ठी भर से अधिक भात नहीं खाता। कोदो, महुआ, मकई, साँवा, काँवन, चाहे जिसकी भी रोटी दे दो, खुशी-खुशी खा लेगा और दो चुल्लू पानी पीकर संतोष की साँस लेता उठ जायेगा, बड़ा ही सुभर है, तनिक भी नहीं खेलेगा, मालिकाईन।''[3] तब मालकिन बलचनमा को दो आणे महीना और खाना कपड़ा देने पर राजी हो जाती है। नागार्जुन ने इसी बात की ओर हमारा ध्यान खींचा है कि भूख एवं गरीबी के कारण तत्कालीन समय में गाँव के लोगों की कैसी दुर्दशा बनी थी? बहुत सारा काम करने पर भी छोटी मालकिन उसे खाने के लिए कलवा की बासी रोटी या महुआ की रोटी और नोन पर सरसों का तेल देती है। जब कभी मालकिन खुश हो जाती है तब उसे बासी या सूखा पकवान, सड़ा आम, बदबूदार दही आदि मिल जाता था। इसी तरह कभी-कभी किसी की कमजोरी को ही लोग, अपना हथियार बना लेते हैं। बलचमना का थोड़ा-सा खेत भी था; जो मँझले मालिक के कलमी आम के बाग के पड़ोस में ही था। मालिक की नजर उस खेत पर थी। बाद में दादी और माँ को फँसाकर मालिक वह खेत अपने नाम करवा देता है। इसी बात को लेकर बलचनमा अपना दु:ख प्रकट करता है-''चौकोर कलम बाग के लिए उनको हमारा दो कट्ठा खेत चाहिए था और हमें चाहिए अपने चौकोर पेट के लिए मुट्ठी भर दाना।''[4] यह दु:ख, दर्द, पीड़ा केवल बलचनमा के परिवार की ही नहीं थी तो पूरे अँचलीय क्षेत्र की पीड़ा बनी हुई थी। जिसका चित्रण नागार्जुन ने इस उपन्यास के माध्यम से किया है। बलचनमा के साथ समस्तीपुर के अन्य मजदूरों की आर्थिक दयनीयता भी काफी गंभीर दिखाई गई है। इन मजदूरों को भादों, सावन, आसिन, कार्तिक महीने के काल में कोई काम न होने के कारण कोई घर बैठे घास की चटाई बुनता तो कोई मछली

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

पकड़ने का काम करता है। इससे प्राप्त छोटी-सी आमदनी पर ही मजदूरों को घर चलाना पड़ता है। भूचाल जैसी प्राकृतिक आपदाओं के कारण किसान मजदूरों की आर्थिक स्थिति किस प्रकार दयनीय हो जाती है? इसका भी वर्णन प्रस्तुत उपन्यास में देखने को मिलता है।

'बलचनमा' उपन्यास में छुआछूत की समस्या का भी वर्णन किया गया है। समस्तीपुर जैसे गाँव में पंडित लोग निम्न जाति के लोगों से घर के छोटे-छोटे काम करवा लेते हैं, लेकिन उनकी छाया भी छूना पाप समझते हैं। इसी गाँव का एक बूढ़ा वैद्य; जो बीमार लोगों को दवा देता है, कभी-कभी बीमार व्यक्ति के घर जाकर उसका इलाज करवाता है, लेकिन यह वैद्‌य निम्न जाति के लोगों के घर कभी नहीं जाता। कोई निम्न जाति का व्यक्ति यदि दवा माँगने आता है तो उसे आँगन के बाहर ही खड़ा कर देता है। बलचनमा जब एक दिन अपनी बीमार दादी माँ के लिए दवाँ माँगने वैद्‌य के पास जाता है तो बूढ़ा वैद्य उसे आँगन में लगे अनाज के ढेर को हौदे में भरने के लिए कहता है। इसी तरह तत्कालीन समय में ग्रामीण आँचलों में छुआछूत जैसी समस्या बहुत गंभीर थी। इस उपन्यास में गाँवों में हो रहे जातिभेद और उच्च-नीच का चित्रण स्वाभाविकता से हुआ है। साथ ही ग्रामीण अंचलों में कुछ ऐसे भी लोग हैं; जो सबको समान समझते हैं और किसी भी प्रकार के भेदभाव के बिना आम आदमी की मदद करते हैं। ग्रामीण समाज की इसी विशेषता की ओर भी नागार्जुन ने हमारा ध्यान आकर्षित किया है।

ग्रामीण समाज में पारंपरिक अंधविश्वास, रीति-रिवाज और अंधश्रद्‌धा आदि बातों की ओर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। पंडित या पुरोहितों ने किसी विशेष वर्ग को अज्ञानी रखने और अपना स्वार्थ सिद्‌ध करने के लिए समाज में धार्मिक अंधविश्वास फैला दिया है। ''धार्मिक जीवन के बाह्याडंबर, देवी-देवताओं की पूजा, भूत-प्रेतों में विश्वास, पशुबलि, मनौतियाँ एवं प्रायश्चित्त आदि ने धर्म को इतना पंगु और खोखला बना दिया कि, धर्म के ठेकेदार अपनी स्वार्थ सिद्‌धि के लिए सभी धार्मिक विकृतियों का पोषण करते रहें।''[5] इसका चित्रण 'बलचनमा' उपन्यास में अधिक मात्रा में मिलता है। लोगों का मानना है कि सुखिया छोटी मालकिन के मायके रहने वाली खवासीन है; जिसे किसी भूत ने पकड़ लिया है। वह बहुत ही अजीब-अजीब हरकतें करती हैं। कभी जोर से रोती है तो कभी नंगी भी हो जाती है और जोर-जोर से चिल्लाती है-ही -ही-ही-मैं काली हूँ पोखर पर जो बौना पीपल है उसी पर रहती हूँ। खाऊँगी समूचा गाँव। बकरा दो, बकरा... ।''[6] सूखिया को भूत के चंगुल से छुड़ाने के लिए तांत्रिक दामो ठाकुर को बुलाया जाता है। वह बंद कमरे में सुखिया का भूत उतारता है। जब कभी दामो ठाकुर गाँव में मौजूद नहीं होता तो मालकिन हवेली में घोड़े की निगरानी करने वाले अनंत बाबू को सुखिया के कमरे में छोड़कर बाहर से दरवाजा बंद कर देती है। यह सब बातें जैसे सुखिया को भूत लगना और दामो ठाकुर

तथा अनंत बाबू के द्वारा बंद कमरे में भूत उतारना यह केवल दिखावा मात्र ही है। सुखिया केवल शारीरिक वासनापूर्ति के लिए ही यह सब नौंटकी करती है। धर्म, रूढ़ि-परंपराएँ आदि को आधार बनाकर पंडे-पुजारी लोगों में अंधविश्वास फैलाते हैं। बलचनमा को राधाबाबू स्वयं पढ़ा-लिखाते हैं। बलचनमा भी दिल लगाकर पढ़ने लगता है। जब राधाबाबू की बहन उनसे मिलने आती है तब उसे अपने भाई का यह कार्य पसंद नहीं आता और वह अपनी भाभी से कहती है- ''हमारे अजिया ससूर का कहना था कि छोटी जात वालों जो आखर ज्ञान देता है, उसका अपना तेज घटता है और जो शुद्र को समूची पोथी पढ़ा दें, उसके पित्तर स्वर्ग छोड़कर नरक में रहने को मजबूर होते हैं।''[7] इस तरह की बहुत-सी घटनाएँ प्रस्तुत उपन्यास में चित्रित है; जो धर्मांधता, जातीयता आदि का पर्दाफाश करती है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि नागार्जुन जी ने 'बलचनमा' उपन्यास के माध्यम से दरभंगा आँचलीय क्षेत्र के ग्राम जीवन संबंधी विविध समस्याओं को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। आर्थिक विवशता मनुष्य की कैसे मजबूरी बनती है? और अमीर लोग उसका फायदा कैसे उठाते हैं? इसका चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में देखने को मिलता है। उपन्यासकार ने जमीदारों की शोषण वृत्ति, अत्याचार, उनकी कामुकता और सामंतवादी नीतियों का उल्लेख किया गया है। जातीयता, धर्मांधता आदि के कारण निम्न जाति के लोगों को सदियो से कैसे अन्याय-अत्याचार सहना पड़ा है? इसका दर्दनाक चित्रण प्रस्तुत उपन्यास में देखने को मिलता है। साथ ही परंपरा, रीति-रिवाज, अंधविश्वास आदि को आधार बनाकर कुछ लोग अपना स्वार्थ कैसे साध्य करते हैं? सामान्य लोगों को कैसे फँसाते हैं? इसका वर्णन आँचलिक उपन्यास 'बलचनमा' में मिलता है।

➢ **संदर्भ ग्रंथ सूची:**

1. सत्य नारायण, नागार्जुन, रचना प्रकाशन, जयपुर, संस्करण: 1991, पृष्ठ-71
2. नागार्जुन, बलचनमा, किताब महल, इलाहाबाद, संस्करण: 1987, पृष्ठ-3
3. वही, पृष्ठ-4
4. वही, पृष्ठ-13
5. डॉ. दिलीप भस्मे, नागार्जुन के आँचलिक उपन्यास, अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर, संस्करण: 2005, पृष्ठ-83
6. नागार्जुन, बलचनमा, किताब महल, इलाहाबाद, संस्करण:1987, पृष्ठ-20-21
7. वही, पृष्ठ-100

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

विशिष्टता की पहचान है-आँचलिकता

-डॉ. दीपक तुपे

प्रस्तावना:

'आँचल' देश का एक विशिष्ट भूभाग या खंड होता है; जिसकी अपनी विशिष्टता होती है। इस विशिष्ट अँचल के जीवन की गतिविधियाँ, विशिष्ट धाराएँ, विशिष्ट रूप, रंग भी विशिष्ट होते हैं। इसकी अपनी अलग पहचान और अलग संदर्भ होते हैं। 'अँचल' का सामान्य अर्थ है- 'अँचल विशेष की जीवन पद्धति, रीति-रिवाज, लोकरीति और लोकरूढ़ि, बोलचाल अर्थात् अँचल की संपूर्ण संस्कृति की जो स्थानीय विशिष्टताएँ हैं।' उन्हीं की अभिव्यक्ति पर आँचलिक उपन्यास का भवन खड़ा होता है। आज भले ही आधुनिक सभ्यता के युग में भारतीय संस्कृति की परिभाषा बदली हो, फिर भी आँचलिक खंडों में उसका असली रूप देखने को मिलता है। उनमें रूढ़ि-परंपराएँ, जीवन शैली, अंधविश्वास जीवित हैं। देश की लोकसंस्कृति को यदि मूल रूप में देखना हैं तो आँचलिक उपन्यासों में उसका सजीव चित्रण पाया जाता है।

आँचलिक उपन्यासों में स्थानीय रंग, रीति-रिवाज, वातावरण, संस्कृति का चित्रण भाषा के माध्यम से परिलक्षित होता है। सच बात तो यह है कि आँचलिक उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में भारतीय आँचल के रंग, रूप, रेखा और पहचान को अभिव्यक्त किया है। उन्नसवीं सदी के प्रारंभ में आँचलिक उपन्यासों का निर्माण हो चुका था। सन् 1980 के पश्चात् हिंदी आँचलिक उपन्यासों ने करवट बदल दी है और देश के एक आँचल की जीवनशैली को, लोकसंस्कृति को सहज, सरल और यथार्थ ढंग से परिचित कराने का प्रयास किया गया है। इन आँचलिक उपन्यासों में सामान्य मनुष्य को चित्रित किया जाता है। अँचल यानी वस्त्र का छोर, साड़ी, ओढ़नी का वह छोर जो सीने और पेट पर रहता है। दूसरे शब्दों में कहे तो आँचल यानी छोर, देश का प्रांत, कोना, तट किनारा आदि। स्वातंत्र्योत्तर काल में हिंदी उपन्यास साहित्य में एक नई धारा प्रवाहित हो गई, जिसमें नायक के रूप में अँचल का प्रयोग होने लगा। इसमें विशिष्ट यानी अछूते, उपेक्षित, पिछड़े अँचल विशेष की समस्याएँ उजागर होने लगी। आधुनिकता और प्राचीनता की टकराहटें, सामंती मानसिकता, नगरोन्मुखता, प्राकृतिक विपदाएँ, चुनाव, टूटन, सांस्कृतिक विघटन, अंधविश्वास जैसे अनेकानेक संदर्भों को आँचलिक उन्यासकारों ने अपने लेखन का विषय बनाया है। दरअसल आँचलिक उपन्यासों में विषय वैविध्य, जन-चेतना, सांस्कृतिक चेतना, आँचलिकता, संघर्षशीलता, अस्मिता, भावात्मक एकता, प्राकृतिक सुषमा,

स्थानीय रंगत, अन्याय का विरोध, प्रगतिशीलता, मानवतावाद का विवेचन-विश्लेषण किया जाता है। फणीश्वरनाथ रेणु ने 'मैला आँचल' पहला आँचलिक उपन्यास लिखकर सन् 1954 ई. में आँचलिक उपन्यास लेखन की धारा को प्रवाहित किया अर्थात् रेणु ने आँचलिक उपन्यास लेखन की नींव रखीं। उनके उपन्यासों में यात्रा, पहाड़ी, सरिता, सागर, जन-जातीय और नगर अँचल के सारे रंग मौजूद है। इन उपन्यासों में अछूत क्षेत्रों का परंपरागत, अभावग्रस्त, लोक-जीवन के साथ लोक-संस्कृति के विविध आयामों का उद्घाटन हो चुका है।

आँचलिक उपन्यास में प्रयुक्त लोकसंस्कृति, आँचल की परंपराएँ, रीति-रिवाज, मान्यताएँ, अंधविश्वास का ही प्रस्ततीकरण नहीं बल्कि मानव जीवन का सत्य का उद्घाटन होता है। आँचलिक उपन्यासों में प्रगाढ़-स्थानीय रंग के साथ प्रदेश विशेष महत्वपूर्ण होते हैं। इसमें अँचल के लोगों के रहन-सहन, खान-पान, लोकवाणी तथा उत्सव-पर्व-त्यौहार आदि की स्पष्ट झलक दिखाई देती है। भुवनेश्वर मिश्र कृत 'धराऊ घटना' (1893), 'बलवंत भूमिहार' (1926), शिवपूजन सहाय लिखित 'देहाती दुनिया' (1926), प्रेमचंद कृत 'गोदान' (1936), निराला कृत 'बिल्लेसूर बकरीहा' (1941), वृंदावनलाल वर्मा कृत 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' (1946), नागार्जुन कृत 'रतिनाथ की चाची' (1944) आदि उपन्यासों में स्थानीय रंग तथा विशिष्ट अँचल के विभिन्न पहलुओं का चित्रण मिलता है।

आँचलिकता आज केवल पहाड़ों, ग्रामों तथा सागर से लेकर 'झुग्गी-झोपड़ियों' के माध्यम से बड़े-बड़े महानगरों तक आ पहुँची हैं। आँचलिकता राष्ट्रीयता का प्रतीक है। देश के विभिन्न अँचल ही मूलत: भारतीय संस्कृति के रक्षक है। वर्तमान जटिल परिवेश और विघटन के बावजूद उन्होंने भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखा है। इसमें एकता और सामंजस्य की भावना होती है। इन उपन्यासों में अँचल का यथार्थ चित्रण, भौगोलिक-प्राकृतिक परिवेश का अंकन, अँचल की भाषा और लोकसंस्कृति का महत्व अंकित किया जाता है। अत: आँचलिक उपन्यास में अँचल का समग्र और यथार्थ चित्रण होता है। इसका कथानक विस्तृत होता है। आँचलिक उपन्यास के कथानक में भौगोलिक एवं प्राकृतिक परिवेश, लोक-संस्कृति का चित्रण, आत्मीयता, आँचलिक भाषा आदि बातों का चित्रण हुआ करता है। परिणामत: पाठकों को अँचलों एवं वहाँ की लोकसंस्कृति को समझने का मौका मिलता है। नागार्जुन का 'बलचनमा' (1952), शिवप्रसाद रूद्र का 'बहती गंगा' (1952), देवेंद्र सत्यार्थी का 'रथ के पहिए' (1953), उदयशंकर भट्ट का 'सागर लहरे और मनुष्य' (1955), फणीश्वरनाथ रेणु का 'परती

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

परिकथा' (1957), रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' (1958), राजेंद्र अवस्थी का 'जंगल के फूल' (1960), राही मासूम रजा का 'आधा गाँव' (1966) आदि उपन्यास उल्लेखनीय हैं। शिवप्रसाद सिंह का 'अलग अलग वैतरणी' (1967), श्रीलाल शुक्ल का 'राग दरबारी' (1968), रामदरश मिश्र के 'जल टूटता हुआ' (1969), जगदीश चंद्र के 'धरती धन न अपना' (1972), यादवेंद्र शर्मा 'चंद्र' का 'हजार घोडों का सवार' (1973), हिमांशु जोशी का 'कगार की आग' (1976), विवेकी राय के 'लोकऋण' (1977) और 'सोनामाटी' (1983), कृष्णा सोबती का 'जिंदगीनामा' (1979), मणि मधुकर का 'पिंजरे में पन्ना' (1981), हिमांशु जोशी का 'सु-राज'(1982), चंद्रकांता का 'ऐलान गली जिंदा है' (1984), ठाकुर प्रसाद सिंह का 'सात घरों का गाँव' (1985), शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष' (1989), संजीव का 'धार' (1990), वीरेंद्र जैन के 'डूब' (1991), कमलाकांत त्रिपाठी के 'पाहीघर' (1991) और 'बेदखल' (1997), भगवानदास मोरवाल का 'काला पहाड़' (1999), मैत्रेयी पुष्पा का 'अल्मा कबूतरी' (2000), मिथिलेश्वर का 'यह अंत नहीं' (2000), हरिराम मीणा का 'धूणी तपे तीर' (2008), रणेंद्र का 'ग्लोबल गाँव के देवता' (2008), श्रीप्रकाश मिश्र का 'जहाँ बाँस फूलते हैं' (2011), महुआ माझी का 'मरंग गोंडा निलकंठ हो गया' (2012) आदि उपन्यास अलग-अलग अँचल की अलग-अलग विशेषताएँ, वहाँ के मिट्टी की गंध एवं विभिन्न रंग की पहचान लेकर पाठकों के सामने आते हैं। ये उपन्यास पाठकों को वहाँ के आँचल का सच्चा चित्र आँखों के सामने प्रस्तुत करते हैं।

निष्कर्षत: कहना सही होगा कि आँचलिक उपन्यासकार विशिष्ट अँचल विशेष के जन-जीवन को स्पष्ट करते हैं। साथ ही ये उपन्यासकार विशिष्ट अँचल का रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, स्थानीय बोली, रंग, हास-उपहास, लोकजीवन की गतिविधियाँ आदि का सच्चा खाँका समाज के सामने प्रस्तुत करते हैं। ये लेखक उपन्यास में चित्रित विशिष्टता के कारण अलग-अलग अँचल की अलग पहचान कराते हैं, इसमें संदेह नहीं।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

हिंदी के आँचलिक उपन्यास

-वैशाली कांबळे

प्रस्तावना :

हिंदी उपन्यास की यात्रा में जो महत्वपूर्ण मोड़ दिखाई देते हैं उनमें आँचलिक उपन्यास अपनी अलग पहचान रखता है। साहित्य में 'आँचल' शब्द लाक्षणिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यह 'अँचल' क्षेत्र का विशेष भाग अथवा महत्वपूर्ण हिस्सा होता है। यह ऐसा क्षेत्र होता है जिसकी अपनी निजी विशेषताएँ और पहचान होती हैं। 'अँचल' उस समग्र भू-भाग की विशेषताओं का द्योतक होता है।

विकास : हिंदी उपन्यास के विकास में मुंशी प्रेमचंद का जो स्थान है वही आँचलिक उपन्यास के विकास में रेणु जी का है। रेणु आँचलिक उपन्यास के विकास में मील का पत्थर है। अत: स्वातंत्र्योत्तर आँचलिक उपन्यास के विकास को 'रेणु जी' के परिप्रेक्ष्य में ही देखना उचित होगा। हिंदी आँचलिक उपन्यास की विकास का अध्ययन निम्न युगों में किया जाएगा।

रेणु पूर्व युग (सन् 1941 से सन् 1951 तक): इस युग में रेणु जैसे विशुद्ध आँचलिक उपन्यास तो नहीं लिखे गए, लेकिन आँचलिकता के कुछ तत्त्वों का निर्वाह इस युग में किया गया है। हिंदी के आरंभिक उपन्यासों में व्यापक जीवन दर्शन का अभाव दिखाई देता है। 'गोदान' विशुद्ध आँचलिक उपन्यास तो नहीं है, मगर उसमें आँचलिकता के अधिकतर तत्त्व विद्यमान है। इस युग के उपन्यासों में वृंदावलाल वर्मा के 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई' नागार्जुन का 'रतिनाथ की चाची', वृदांवनलाल के 'मृगनयनी' आदि उपन्यासों में अंशिक रूप से आँचलिकता के दर्शन होते हैं।

रेणु युग (सन् 1952 से सन् 1966 तक): फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' उपन्यास का प्रथम प्रकाशन सन् 1954 ई. में हुआ। यह हिंदी का प्रथम विशुद्ध आँचलिक उपन्यास है। इसमें रेणु ने बिहार राज्य के 'पूर्णिया' जिले के 'मेरीगंज' अँचल को पिछड़े हुए अँचल का प्रतीक मानकर उसका सूक्ष्म एवं समग्र रूप में चित्रण किया गया है। सन् 1952 ई. में नागार्जुन का 'बलचनमा' उपन्यास प्रकाशित हुआ। इसमें बिहार राज्य के दरभंगा जिले के एक गाँव को केंद्र में रखा है। ग्राम जीवन का संपूर्ण आँचलिक परिवेश इसमें उभरकर आया है। यह हिंदी का एक महत्वपूर्ण आँचलिक उपन्यास है।

रेणुत्तर युग (सन् 1967 से आज तक): श्रीलाल शुक्ल के 'राग दरबारी' (1968) उपन्यास में शिवपालगंज गाँव के माध्यम से भारतीय ग्राम-जीवन की मूल्यहीनता को व्यंग्यात्मक ढंग से

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

रेखांकित किया है। इसका फलक व्यापक है। इसके परिवेश, भाषा, संस्कृति का चित्रण एवं शिल्प में आँचलिकता विद्यमान है। शिवप्रसाद सिंह कृत 'गली आगे मूड़ती है' उपन्यास में काशी की सांस्कृतिक चेतना को उभारने का प्रयास किया है।

'मैला आँचल' की आँचलिकता: फणीश्वरनाथ 'रेणु' द्वारा लिखित 'मैला आँचल' उपन्यास की आँचलिकता विषय की दृष्टि से जितनी नूतन है, उपन्यास शिल्प की दृष्टि उतनी नूतन नहीं है। उपन्यास के शीर्षक को कविवर सुमित्रानंदन पंत की काव्य पंक्तियों से चुना गया है-

''भारतमाता ग्राम वासिनी,
खेतों में फैला है श्यामल,
धूल भरा मैला-सा आँचल।''

उपन्यास का केंद्रीय स्थल पूर्णिमा जिले का मेरीगंज गाँव है; जिसके उत्तर में नेपाल, पूरब में बांगलादेश, दक्षिण में संथाल, पश्चिम में मिथिला का सान्निध्य है। फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने उपन्यास की कथावस्तु को दो खंडों में बाँटा है और दो खंडों के अंतर्गत छोटे-छोटे अनेक परिच्छेद हैं, जिनकी संख्या सड़सठ है। प्रथम खंड में देहात में मनाए जाने वाले त्योहार, धार्मिक आडंबर, गाँव के रस्म-रिवाज, राजनीतिक जीवन, सोशालिस्ट आंदोलन, गाना-बजाना आदि का विस्तृत वर्णन है, जिससे पाठक ग्राम संस्कृति से परिचित होता है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि अनेक आलोचकों ने 'मैला आँचल' उपन्यास के शिल्प की सराहना की है। वस्तु-शिल्प के लक्षण, कथा की विराटता, चरित्र-चित्रण की विविधता, भाषा की प्रौढ़ता एवं गरिमा आदि 'मैला आँचल' में प्रतिबिंबित है। उपन्यास के सभी तत्त्व 'मैला आँचल' की आँचलिकता को स्पष्ट करते हैं। निश्चय ही 'मैला आँचल' अपनी कथ्यगत एवं शिल्पगत विशेषता के कारण एक श्रेष्ठ आँचलिक उपन्यास सिद्ध हुआ है।

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

The Regional Novel: A Diaspora Perspective

-Mrs. Shailaja A. Changundi

D. K. A. S. C. College, Ichalkaranji.

Introduction:

Region is one specific geographical, cultural area. It examines the life and atmosphere, trends of behaviour of the people in specific areas. The term 'region' has typical concerns of the people regarding the social, political, cultural economical and environmental conditions. The 'region' is usually understood as a physical entity expressing individuality of a particular space. It represents a philosophy of self-development with its own resources and capacities. The geographical, cultural and political and domestic regions would also be considered while thinking of the 'region'. When we think of 'geographical' meaning of region, it means topography, climate etc. and other approaches like the anthropological & ecological study, the interrelations between the peculiar traits of the people and the ecological, geographical area and the relation between environment and people. 'Region' in other terms, magnifies the interests and concerns of the local group in relation to the society. According to Robert E. Park, "it is the long years of association & cooperation" that brings about a kind of specificity to the region. The term 'region' refers to the culture, history literature colonization, support systems in the society and they do have certain relation to the full fledged development of the images like the region. The novelist in the process of negotiating the regional space indulges in recreating an imaginary or real story of people of culture, of any identity. From Thomas Hardy down to Indian regional novelists, all of them offer a saga associated with the region. The images of religion that recur in the novels in Indian writing in English relate to the author's sense of place to his conception of selfhood itself. Some of the Indian writers use history, folks, myths or 'sthalpurana' for the fabrication of the region.

Western Regional Novel: Thomas Hardy creates an imaginary world called 'Wessex'. He creates this space as a foil to the polluted industrial cities. In all these narratives there is an effort to bring together a 'united past' which is owing to the interventions of Industrial Revolution and Colonization. Thomas Hardy projects Wessex as a veritable repository of all the enduring qualities of nature. Wessex symbolizes the rhythm of the life of country folk in all their realistic modes. The portrayal of Wessex acquires completion along with Hardy's perfection. Hardy has been hailed as 'myth maker' for his poetic delineation of Wessex. His novels depict the regional society, as he perceives the familiar rural life Dorset. To give vent to his creative imaginations Hardy invented an imaginary world "Wessex" endowing the place with the familiar features of Dorset.

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

In the words of Thomas Hardy hiself,"I first venture to adopt the word "Wessex" from the pages of early English history, and give it a fictitious significance as the existing name of the district once included that extinct kingdom. The series of novels I projected being mainly of the kind called local, they secured to require a "territorial definition of some sort to find unity to the scene" (Preface to F. F. M. C. XXXIX)

Wessex seems not just to give unity to the scene in the Aristotlelian sense of the term, it created an imagined land amidst the tumultuous Victorian Period: A Romantic escape hatch for the strife-torn Victorian world. Wessex became Hardy's imaginative space to explore a culture, customs and the emotional turbulence of the pre-Industrial population. Wessex world seems far away from the Wessex smoky, foggy, dingy London of Dickens.

Indian Novelists: If it is an imaginary world that comes alive in Thomas Hardy's novels, the Indian. Regional novel writers Phaneshwarnath Renu, Trashankar Banerjee and Kuvempu indulged in retelling the stories of an actual regions like Maryganj, Shivkalipur and Malnad. The ethos of the region is very much part of the creative consciousness of the author. In Maila Anchal, Maryganj is the place where all activity takes place. Renu seems to have bee. n inspired by his knowledge of P.C Roy Choudhury's Maryganj, which he created in his book Inside Bihar. The place is named after a European lady who used to reside in that area. The fictional village of Maryganj is situated on the banks of the river Kamala. It can be reached from the railway station of Rouhthat, 14miles eastwards, after crossing the river Burhi Kosi. The 'kothi' of Maryganj is very famous and it is constructed by W. G. Martin, an English indigo planter. Mary is the name of Mr. Martin's wife. For his convenience he has even constructed a road and established a post office. To attribute a touch of credibility to his narration, Renu endows his fictional village with all the administrative units that one finds in any Indian village of that time.

Tarashankar too gives an account of the emergence of the region with its exact geographical features in Gandevata. In a way the story of the region invoked here provides the readers opportunities to look deeper into the life and culture of the people in the past. It, in fact, helps in establishing a link with the unheard history of the people and the region in turn. Gandevata is set in the Birbhum village of Shivkalipur. Tarashankar observes that Shivkalipur derives its name from two nominally separate villages, Shivpur and Kalipur. Shivpur gets its name from a sect of Devals who lived in that village. He says, They had acted as priests and caretakers at the shrine of Siva in Kalipur. But they were no longer there. The few who had not died had migrated elsewhere… Shivpur derives its name from the fact that they lived there. (Banerjee 17)

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

The relationship of people with the land is highlighted here. The fertility of the soil, the rains, plains, and hills, all become part of the culture of the region. Yet another related aspect of the region is encapsulated in Kuvempu's The House of Kanooru. Kuvempu renders the history of 'Malnad' (the land of the hills with plenty of rain). Water, rarth, and fire stand as symbols for regional life. The House of Kanooru renders the story of Vokkaliga community who are basically agriculturists. If Malnad tells the story of a region with plenty of rain, the Jokumara myth exemplifies the lack of it. Rain rituals are a common feature in agrarian societies. The Jokumara (one who brings joy) myth is associated with one such rain ritual. These rituals directly relate to attempts, to appease considered a harbinger of rain and traditionally the people appease him for rains and happiness. He is the brother of Lord Ganesha. When Ganesha visits the earth, he overlooks the problems of people and gives a very good report to his parents about the conditions of life on earth. People become furious over the indifference of the Lord and when Jokumara visits the earth, people present him with their problems, the most important being the drought situation. This myth is popular in Karnataka and the southern part of Andhra Pradesh. . The Jokumara idol is made with clay by one of the potters in the village. People parade it with its enlarged mouth and bulging eyes in the village for three days. The carriers of the idols get offerings of grain and money from the villagers. At the end of the third day they leave it with the dalits who in turn will take the idol into the nearby field and bear it. This rain ritual dramatizes the scarcity of food and other societal inequalities in the villagers. The rain related myths also adds to regular myths about the region. It's interesting to see the treatment meted out to the Jokumara idol. In these folk myths gods are treated to all human emotions and passions. At one level they worship the idol, at another level they express their anguish (at the prevailing drought situation) by beating up the idol. Gradually Jokumara becomes synonymous with the rain.

Conclusion: If we compare the regional aspects in the novels of Thomas Hardy, one can say that the regional novels of Hardy have covered few aspects of rural life . In contrast to these western novels, our Indian novels in English vary to a large extent. There various regions with a large variety of themes. It has the culture, life, the societal life in ti. The region in Indian English novels starts from the geographical land and reaches the homes of the people and depicts the life in the homes of Indian villages. A famous trio of the renowned writers in India, R. K. Narayan, Mulk Raj Anand and Raja Rao has depicted the rural life of people in their novels with the richness of the land and culture.

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

Regional Backdrop In The Novels Of R.K. Narayan

- Mrs. Sunita J. Velhal,

D. K. A. S. ollege, Ichalkaranji.

Abstract:

R.K. Narayan, a well-known Indian novelist, is considered as regional novelist in the tradition of Scott, Hardy, Bennett, James Joyce, Faulkner etc. Narayan's novels focus on the life, particularly of the middle class, as lived in Malgudi- a district of South India are usually termed as regional novels. He has immortalised 'Malgudi' Regional novels are set in a particular locality presents it in details and shows it influencing the lives of the people inhabiting it. We may not be able to apply the definition of regional novel to Narayan's Malgudi Novels, yet the district of Malgudi is not different than other regions and the people inhabiting it are not greatly influenced by the local ways of life. Some may show impact of the place at times but most characters defy the traditional norms of life prevalent in Malgudi. The place in the works of writer may be the one he knows fully well. It may be artistically and tactfully disguised or concealed but the real one. As for Narayan, Malgudi stands for Lalgudi in Trichinopoly district or for Lalgudi merged with Yadavagiri as pointed by K.R. Srinivas Iyenger. Narayan knows all about the district of Malgudi that he paints. With his description the reader can visualise the entire district and the people living there. The place in fiction as Eudora Welty says 'an all-inclusive framework' and hence it shapes and governs the writer's art of characterisation, his sense of life and his point of view. The paper intends to present this picture of Malgudi as regional backdrop in Narayan's famous novels.

KEYWORDS: R. K. Narayan as Regional Novelist, Setting of Malgudi – the town, Malgudi Novels, Representation of India & the Indian characters. R.K. Narayan, a well-known Indian novelist, is considered as regional novelist in the tradition of Scott, Hardy, Bennett, James Joyce, Faulkner etc. Narayan's novels focus on the life, particularly of the middle class, as lived in Malgudi- a district of South India are usually termed as regional novels. He is a highly creative regional novelist. He created the town in September 1930. He has not given any map of Malgudi but this setting is the real essence of a novel. He creates an imaginary world which becomes the backdrop for his novels and manifests his vision of life. Mariam Allot says: " the artistic self- consciousness which compels the novelist to make "things of truth" from

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

"things of fact" by adjusting them to their new context has gradually seen to it that the background and setting of his 'scene' shall be as integral to his plot, his characters, his dialogue and his narrative technique."

The place becomes the backdrop for the customs, beliefs and the way of life of a people. It reflects certain norms and moral social and ethical codes. Narayan's imaginary place becomes a living place that can be everywhere in India. He depicts the social-cultural milieu and the changes that occur in the place over the years. He shows how the place and the people are interlinked and interdependent and one cannot be seen without the other. Malgudi presents a vision of India in miniature. Nallappa mango Grove, the Mempi Forest, reached by the Grove street and Forest Road respectively; Trunk Road to Trichinopoly; Malgudi railway station from where one can board train to Madras; all these are the specific landmarks of the town. Malgudi is not a static town. It is growing like any character. It becomes a part and parcel of writer's as well as readers' life. It is growing and developing town. It has got geographical changes as well as many new institutions or localities have come into existence in it e.g. The Engladia Insurance Company, The Truth Printing Works, the Regal Haircutting Saloon, Anand Bhavan, the Central Co-operative Land Mortgage Bank, the Surprise Studio, Lawley Extension. New printing presses such as Empire Press, the Sun Press, Golden Printing and Star Press are set up with modern machinery. Mempi Hills is connected with Malgudi Railway Station by means of buses and taxis. Mempi Bus Transport is also here. Picture halls, new shops and new hotels are started. The roads are renamed with leaders' names. His novels represent changing social, political and cultural situations in India. It has been created and developed in such a way that it becomes a microcosm of the country and of the world at large. Dr. C. L. Khatri in his article "The Bachelor Of Arts: Regional Ambience, Universal Appeal" says "His world is limited as the world of Jane Austin but he lived in it and lived its life." That's why he could portray the local naturally and authentically with ease and grace and could create characters that became real persons through his novels e.g. Schoolboy, Swami in his first novel 'Swami and Friends' becomes an graduate in 'the bachelor of arts' and the graduate evolves into the teacher in 'the English teacher. With this we come to the point that the place and the people cannot be separated. They have to be equally represented and that is achieved by Narayan significantly.

Narayan is regarded as a writer of semi-urban sensibilities. He was born and brought up in Madras and then shifted to Mysore. It is a 'country of the mind' created

 ISBN NO: 978-81-926341-4-2

as a sample of the middle class life in a semi-urban India. Narayan's characters give local colour to the setting of Malgudi with which he achieves his objective of portrayal of life in India. He has created such an attachment with the town that they are almost inseperable, the livesof characters in his novels are presented in the surroundings of Malgudi means his subject is 'Man-in-Society'. In these novels we find depiction of the school-boys, teachers, college boys and college teachers. There is also the financial expert; Marggayya, the printer,Sampath, editor Srinivas, the holy man, Raju, journalist-author Dr. Pal, Chandran, a bachelor. Malgudi is full of different types of people like buffoons' eccentrics, knaves, prostitutes, adulterers, money-grabbers, drunkards , sanyasis and would be gangsters. The characters in Malgudi are like us, real people and involved in the common situations of life and not in the heroic deeds. Their happiness or unhappiness depends on their fate. For example, in the novel, 'Swami and Friends', the hero, Swami is a school-boy and Malgudi is a town under English rule. the conflict between traditional and modernity can be seen in 'The Bachelor of Arts' in which he depicts the life of a Hindu household in South India. Here, Chandran; a bachelor is the hero of this novel who suffers due to family traditions as he could not marry a girl who doesn't belong to his caste and creed but at last runs away from home. In 'The Dark Room', the typical Indian attitudes of life are represented i.e. the husbands are lords and wives are duty bound to obey their commands. 'The English Teacher' is also set against the backdrop of Malgudi where Krishnan, the hero of the novel lives in Malgudi. In the later part, Narayan wrote more mature skilled novels with the setting of Malgudi. These novels consists of 'Waiting for Mahatma', 'The Financial Expert', 'The Guide',' The Man Eater of Malgudi', 'The Vendor of Sweets'. In all these novels, he portrays the regional life and characters very lively. These characters stand before our eyes and seem one of us. This is the success of regional novels that they appeal to us with its 'true to life' manifestation.

Works Cited:

1.P. K. Singh, Five contemporary Indian Novelists. Book Enclave, 2001.

2 Eldora Welty, 'Place in Fiction', Critical Approaches to Fiction, ed. Shiv K. Kumar & Keith McKean (New York: McGraw-Hili, 1968),

3. K.R.S. Iyengar, "Indian Writing in English."

4. R.K. Narayan: Reflections and Re-evaluation ed. Chhote Lal Khatri, Sarup &Sons, New Delhi, 1st edition 2006

5. Deepika Srivastava, Kaushal Kishore Sharma, Four Great Indian English Novelists Some Points of View, Sarup &Sons, 2002.Googal Books.